मनुज देपावत भरी जवानी में रेल दुर्घटना में नहीं रहे वरना उनसे साहित्य और समाज को बड़ी आशाएँ थी। देपावत मे कवितात्मक सावधानी औरो से अधिक थी अतः उनकी सरचना में कौशल भी मिलता है। कवि कौशल अपरिहार्य शब्द और अपरिवर्तनीय विन्यास मे झलकता है।'''दूसरे ध्रुव पर व्यवस्था विरोध की लपटें हैं जिनमें कवि अपने आपको प्रलयवाहिनी का वाहक कहता है और निराशा, रोमान, अंधविश्वास और उनके लेपन के विरुद्ध हममे आक्रोश और उत्साह जगाता है। उसे आज के समाज मे, मनुष्यों के आकार में, राज्यलिप्सा के नशे मे विहँसते दानव दीखते हैं। मनुज देपावत इसी जनरक्त-पिपासु दानव-वर्ग के विरुद्ध कवितात्मक संघर्ष करते हुए खेत रहे।

मनुज देपावत के कवि मे कोरी भावुकता नही है, उसमे *जन स्थिति की पूरी समझ है। वह वर्ग शत्रु को पहचानता है* और हृदय की पूरी उछाल से वह चोट करता है।

—डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

क्रम

प्राक्कथन

'मनुज देपावत ग्रंथ' आपके हाथों में सौंपते हुए आश्वस्त तो नहीं हूँ विशेषकर इसलिए कि 'मनुज' ने जिस समय-काल में जिन परिस्थितियों के बीच अपनी प्रगतिशील चेतना के कारण जिस विप्लवी-स्वर को मुखरित किया था, उसके साथ न्याय कर पाया हूँ या नहीं ? यही मेरे आश्वस्त न होने का कारण है। इस दृष्टि से रही कसर को मैं अपनी कमजोरी मानूंगा।

'मनुज देपावत ग्रंथ' वस्तुतः अपने जिस स्वरूप में तैयार किया गया था उसी स्वरूप में ग्रंथ अपना प्रकाशित आकार ग्रहण नहीं कर सका। यह आप सहज जान सकते हैं कि प्रकाशन के विभिन्न स्तरों पर कोई पाण्डुलिपि कैसे आकार ग्रहण करती है भिन्न-भिन्न कठिनाइयों के साथ। यद्यपि इस ग्रंथ में 'मनुज' देपावत को लेकर जितनी भी सामग्री मुझे सुलभ हुई उसे ही मैंने अपने ढंग से नया सारतम्य देकर प्रकाशित किया है। 'नई चेतना' (मदन-मनुज स्मृति अंक 1952) पत्रिका, 'विप्लव-गान' कविता-संग्रह, डॉ॰ मोहनलालचरण, डॉ॰ लक्ष्मीकान्त शर्मा, श्री गिरधारीलाल, श्री ओंकार श्री के लेखों तथा श्री मेघसिंह परिहार द्वारा लिखित 'मरुस्थल के अग्रदूत मनुज देपावत' लघु शोध-प्रबंध आदि सामग्री का सदुपयोग मैंने किया है और मैं इस अवसर पर आप सभी का आभारी हूँ।

भूमिका लेखन के लिए मैं श्रद्धेय प्रो॰ डॉ॰ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय जी का आभारी हूँ।

इस ग्रंथ को आपके हाथों में पहुँचाने का सारा श्रेय राजस्थान [illegible] संघ के सहायकों श्री वेदव्यास जी को जाता है, क्योंकि यह केवल श्री वेदव्यास जी की ही एक [illegible] का परिणाम है। श्री वेदव्यास जी ने इस ग्रंथ के लिए [illegible] नहीं होगा।

इस ग्रंथ को पूर्णता दें श्री [illegible] देपावत की [illegible] की देर लिए अनुपम अनुभव था।

'मनुज देपावत ग्रंथ' में अब तक 'मनुज' की प्रकाशित सुलभ सभी रचना भी सकलित हुई है। प्रो० डॉ० उपाध्याय ने अपने भूमिका लेख में मनुज के साहित्यिक प्रतिष्ठान में प्रतिष्ठित होने की चिंता व्यक्त की है यह ग्रंथ यदि इस रूप में कहीं सहयोग कर सका तो यही इसकी जरूरत और सार्थकता होगी और इसके प्रकाशन में राजस्थान प्रगतिशील लेखक संघ के सहयोग की भी सार्थकता बनेगी।

'मनुज' देपावत की परिवर्तन आकांक्षी रचनाएं पढ़ते समय मुझे मेरे साथी डॉ० मजुल उपाध्याय, डॉ० हरि महर्षि, श्री विनोद कपूर तथा श्री अनिल देशमुख 'अनजी' की भी स्मृति अनायास हो आती है क्योंकि मेरे इन साथियों ने अपनी इसी भावना को लेकर मुझे सदा उत्साहित किया है।

अपने मित्र डॉ० मेघराज शर्मा के सहयोग के प्रति आभार प्रकट करना यद्यपि मात्र औपचारिकता होगी पर डॉ० शर्मा की अन्तरंगता मेरे लिए सम्पत्ति है।

नरपतसिंह सोढ़ा

मनुज देपावत : कविता यात्रा

वि उस्ताद की अगिन-खोर की परम्परा मे मनुज देपावत की रचनाएं
ख योग्य हैं। राजस्थानी मे जो कार्य 'उस्ताद' ने किया, वही मनुज देपावत
न्दी कविता मे किया। वही सरलता, सच्चाई, अकृत्रिमता, तीव्रता और वही
दोलक वाणी।

शोषण यह शोणित-प्लावन
मैं विप्लव का कवि हू
मेरे गीत चिरन्तन।

मनुज देपावत भरी जवानी मे एक रेल दुर्घटना मे नही रहे वरना उनसे साहित्य और समाज की बड़ी आशाए थी।

देपावत मे कवितात्मक सावधानी औरो से अधिक थी अत. उनकी सरचना मे कौशल भी मिलता है। कवि-कौशल, अपरिहार्य शब्द और अपरिवर्तनीय विन्यास मे झलकता है। कोई एक शब्द भी इधर-उधर नही कर सकता—

रुक रे पल भर अश्रु नयन के
आज तुझे पहचान रहा हूं
पलक बंद कर वातायन के।

दूसरे ध्रुव पर व्यवस्था विरोध की लपटें हैं जिनमे कवि अपने को प्रलय-वाहिनी का वाहक कहता है और निराशा, रोमान, अंधविश्वास और उनके लेपन के विरुद्ध हममें आक्रोश और उत्साह जगाना है। उसे आज के समाज मे, मनुष्यों के आकार मे, राज्यलिप्सा के नशे मे विहसते दानव दीखते हैं। मनुज देपावत इसी जनरक्त-पिपासु दानव-वर्ग के विरुद्ध कवितात्मक संघर्ष करते हुए खेत रहे।

आज उसकी आह से, धन की हवेली हिल रही है
आज होली जल रही है

मनुज देपावत के कवि मे कोरी भावुकता नही है, उसमें जनस्थिति की पूरी समझ है। वह वर्ग शत्रु को पहचानता है और हृदय की पूरी उछाल से वह चोट

करता है। वह जनदुःख मे दुखी होता है, सौन्दर्य-प्रेम के मानवीय र
आकर्षित करते हैं और उसके मन मे क्रांति की भावधाराएं तरंगित ह
उसके मानस की निर्मलता और सत्यनिष्ठा उसकी कविता और गीत व
अनायास पंक्तियां दे जाती हैं कि उसमें कोई सुधार सम्भव नहीं है।

प्राय: जनकवियों मे साधारण और असाधारण, प्रचलित और आ
मिला-जुला रहता है पर सवाल तो यह है कि इस तरह के कवियो में जो ः
और प्रेरक है, जो मात्र प्रचार नहीं है, उसे अलग कर कौन देखेगा ? कब दे
प्रगतिशील लेखक संगठन जब 'पथिक', 'उस्ताद' और 'मनुज देपावत' जैसे
से चुनी हुई रचनाओं का सकलन राजस्थानी, उर्दू और हिन्दी में सपादित
जनता के मध्य प्रगतिशील कवियों की छवि आंतरिकीकृत और एकीकृत
तब प्रगतिशील आंदोलन देशज लगेगा, विदेशी या मात्र बुद्धिजीवी नहीं।

मनुज देपावत मे देशी-प्रगतिशीलता की झलक है, अत: उसे जनाधार
था, आज भी है। सवाल सिर्फ साहित्यिक प्रतिष्ठान में उसकी प्रतिष्ठा है।

मनुज देपावत एक होनहार क्रांतिकारी कवि थे।

मनुज का प्रगतिशील जीवन

'मनुज' कवि का साहित्यिक नाम था, वस्तुतः मालदान देपावत नाम था। श्री कानदान, जो राजस्थान में बीकानेर शहर से तीस किलोमीटर दूर देशनोक नामक गांव के निवासी थे और डिंगल भाषा के कवि के रूप में जाने-माने जाते थे—इन्हीं कानदानजी के घर में कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी संवत् 1984 वि० को मनुज का जन्म हुआ था। अपने पिता से मनुज को कवि व्यक्तित्व प्राप्त हुआ। 'कवि मनुज उन सौभाग्यशाली प्रतिभा के पुत्रों में से थे, जिन्हें कविता वंश-परम्परा से मिली थी, किन्तु उनका सम्पूर्ण काव्य चारण-काव्य-प्रणाली के प्रति एक रचनात्मक विद्रोह है। जिस वातावरण में सामन्ती प्रभुओं की प्रशस्तियों का ताना सना रहता था और कवि कल्पना को केवल सौन्दर्य विलास ही सूझता था, वहां मनुज ने एक नई प्रकार की कविता को जन्म दिया, जो क्रांति की चिनगारियां लिये हुई थी और दासता के पक्ष में अनेकों स्वप्न-मंथन किया रही थी।'

कवि साधारण घर में पैदा होने के कारण सामाजिक विषमता से मनुज का सामना जन्म से ही हो गया था। 'मालदान का बचपन महलों और रोशन-गलियों में नहीं बीता, अपितु एक साधारण कच्चा झोंपड़ीनुमा मकान उसका क्रीड़ा-स्थल था और विपन्नता की अधिकारी गलियों में वह बाढ़ के समान क्रमशः बढ़ता जा रहा था।' मनुज की प्रारम्भिक शिक्षा धीकाणी विद्यालय, देशनोक में ही हुई। अपने अध्यापकों को कवि मनुज ने अपने कवि-व्यक्तित्व से सभी प्रभावित किया था। '...उसने अपने कविता-पाठ से गुरुओं को प्रभावित कर लिया। गुरुओं ने अपनी हृदयगत सद्भावना प्रकट करते हुए कक्षा-सभा में घोषणा की—मान, तू एक दिन कवि-रूप में अवश्य चमक उठेगा!...छोटी-सामयी कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते मनुज के कवि-व्यक्तित्व को अध्यापकों ने पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ स्वीकार किया। इस समय की उसकी स्वरचित कविताएं उसकी विकासशील प्रतिभा का द्योतक करने लगी थीं।'

देशनोक के विद्यालय तक की शिक्षा प्राप्त कर बीकानेर के फोर्ट हाई स्कूल से मनुज ने मैट्रिक तक की शिक्षा पूरी की। मनुज एक सुयोग्य विद्यार्थी

रहा। 'गांव की सीमाओं को लांघकर वह मैट्रिक के सुयोग्य विद्यार्थी के रूप में बीकानेर शहर में आया।'''फोर्ट हाई स्कूल को दो साल तक उस किशोर कवि का नेतृत्व स्वीकारना पड़ा और वह वहां से अच्छे नम्बरों से मैट्रिक पास करके निकला। मनुज का बीकानेर में स्कूल के बाहर साहित्यिक वातावरण में गर्म-जोश स्वागत हुआ। *'मनुज की काव्य-प्रतिभा देशनोक की संकीर्ण दीवारों को तोड़कर* बीकानेर के मुक्त वातावरण में आई और यहां तो उनकी प्रतिभा-वल्लरी निराम सौन्दर्य-प्रसूनों से लद गई। स्थानीय कवि-समाज की नवीनताओं ने उन्हें आकृष्ट *किया और उनकी इन्कलाबी कविता पर परवान चढ़ने लगा।'* तात्पर्य अपने स्कूली जीवन में ही मनुज कविता तथा शिक्षा दोनों ही दृष्टि से होनहार विद्यार्थी के रूप में अपना व्यक्तित्व बना चुका था।

मनुज ने बीकानेर के ही डूंगर कॉलेज में आगे पढ़ने के इरादे से प्रवेश लिया था लेकिन परिवार की आर्थिक तंगी ने उसे विवश किया कि वह उच्च शिक्षा-ग्रहण के विचार को छोड़ दे। उस समय का पूरा कॉलेज अन्य विद्यार्थियों के अतिरिक्त उच्च शिक्षा में रहे मनुज से वरिष्ठ विद्यार्थी, कॉलेज के प्राध्यापक तक मनुज के प्रगतिशील कवित्व से परिचित हो चुका था। उस समय के सुप्रसिद्ध नाट्य कलाकार पृथ्वीराज कपूर, जो एक कार्यक्रम में कॉलेज में पधारे थे—मनुज की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। 'वे इस समय कॉलेज में प्रथम वर्ष के विद्यार्थी थे, पर पारिवारिक उत्तरदायित्व के कठोर और निर्दय हाथों ने उन्हें वहां अधिक दिन नहीं रहने दिया''',''' कॉलेज उनकी प्रगतिशील भावनाओं का पुनरुद्धार करने में असमर्थ सिद्ध हुआ।'

'फिर मार्गदर्शन यौवनारम्भ होते-होते एक प्रगतिशील कवि- 'मनुज' के रूप में आगे कदम बढ़ाता चला आया।' वस्तुतः मनुज राजस्थान के सामंती व धार्मिक [illegible]हरों के बीच से परिवर्तन का स्वर बन रहा था—जन मुक्ति के लिए। उनके [illegible] में जनशक्ति के उन्नायक [illegible] करते थे और जिस भी कवि समाज [illegible] वह [illegible] नई प्रेरणा का एक अद्भुत समूह दिखाई देने लगता।' [illegible] राजस्थान में राजस्थानी और हिन्दी के कवियों का अगुवा बनकर [illegible] फिर आगे बढ़ गया। उसने [illegible] में उद्बोधन [illegible] हुए कहा—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

प्रदेशवासी-ऊटवाले किसान मजदूरों को परिवर्तित चेतना से इस प्रकार लल-कारता रहा।

मनुज का विवाह संवत् २००३ वि० की अक्षयतृतीया को शूरतपुरे के निवासी श्री बद्रीदान की सुपुत्री लक्ष्मी से सम्पन्न हुआ। अपनी जीवन-सहचरी की उदात्त भावनाओं को मनुज के कवि ने सहज एवं सहर्ष स्वीकारा। 'यद्यपि उसकी जीवन-सहचरी शिक्षित नहीं थी फिर भी उसकी उदात्त भावनाएं कवि के जीवन के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुईं।'

बीकानेर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक-पत्र 'लोकमत' के सह-सम्पादक के रूप में मनुज ने अपनी रुचि को प्राण फूंकने का संकल्प लिया। मनुज का पत्रकार अपना कला-कौशल 'लोकमत' के साथ प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने लगा था। मनुज ने अपने पत्रकार व्यक्तित्व के सहारे पत्र को चर्चित व लोकप्रिय किया। 'सन् 1948-49 में 'लोकमत' में उनकी अपनी रचनाएं और उसके मित्रों की रचनाएं प्रकाशित हुई थी, जिसमें 'लोकमत' पत्र की शान में चार चांद लग गये किन्तु 'लोकमत' मनुज की आर्थिक समस्याओं को हल करने में असफल रहा।' यही नहीं 'इस अर्थ में उन्हें कई पत्रकारों की भ्रष्टाचारिता और अवसरवादिता का परिचय हुआ और उनका कोमल मन इसके प्रति बगावत के लिए आमादा होने लगा।' मनुज ने 'नई चेतना' के सम्पादक लक्ष्मीकांत जी से बड़े दर्द के साथ कहा था . "भाई कान्त जी, सोचा था कालेज छोड़कर पत्रकारिता मेरी रुचि और जीविका, दोनों के साथ न्याय कर सकेगी, पर यहां तो नये ही हथकंडे मिले। वाणी के न्याय-मंदिर में भी श्रमजीवी पत्रकार का गला कटता है और उसकी भूखी आंतों के साथ खिलवाड़ किया जाता है, यह युग का कठोरतम अभिशाप है।" उस समय निश्चय ही मनुज की पारिवारिक स्थिति चिन्तनीय थी। लक्ष्मीकान्त जी ने लिखा है कि ये शब्द कहते-कहते उनकी दृष्टि सम्भवतः अपने दीन परिवार की ओर चली गई थी, जहां रुग्ण पिता है, पत्नी है, बहनें है और बच्चे हैं और वे सब जैसे उनसे रोटी की मांग कर रहे हैं। उनके चेहरे पर एक काली छाया-सी आ गई थी, पर फिर भी वे हिम्मत न हारे थे और उन्होंने अपने इरादे को स्पष्ट करने की नीयत से कहा, "यह जीविका की चिंता मुझे एक ऐसा काम करने के लिए विवश कर रही है, जो मेरे व्यक्तित्व के सर्वथा प्रतिकूल है।"—और कुछ दिनों पश्चात मनुज ने रेलवे की ट्रेनिंग लेकर इसी विभाग में 'क्लीयरिंग' में काम करने लगे।

यह सारा प्रकरण यह स्पष्ट करता है कि मनुज का मन स्वतन्त्रजीवी रहकर मसीजीवी होना चाहता था किन्तु परिवार के प्रति अपने प्रगाढ़ अपनत्व व दायित्व ने उन्हें सरकारी नौकरी करने पर विवश किया। सरकारी नौकरी मनुज का कवि नहीं करना चाहता था। मनुज की काव्य-साधना में सरकारी नौकरी में कुछ व्यव-धान-सा आया, पर वे फिर भी लिखते रहे। उनकी कविताएं प्रतिष्ठित पत्र-

पत्रिकाओं में बराबर छपती रही और लोग उन्हें चाव से पढ़ते रहे। मनुज की राजस्थानी और हिन्दी कविताओं का प्रकाशन उस समय के पत्र 'लोकमत', 'जनता', 'नया समाज' और 'नई चेतना' आदि में होता रहा था। मंच से मनुज का काव्य पाठ बड़ा प्रभावशाली था। और गिरधारीलाल जी तो यहां तक मानते हैं कि मनुज की रचनाओं के प्रकाश में आने की पृष्ठभूमि उसका प्रभावशाली कविता-पाठ था। वह अपने बालों को सहलाता हुआ जिस मजलिस में बोलना आरम्भ करता, उसमें दूसरे कवि के बोलने की मांग करने की गुंजाइश समाप्त हो जाती थी। देशनोक में पिता-पुत्र कविता-संग्राम प्रसिद्ध हो चुका था। पिता सामन्ती विचारधारा की कविता में अपने को व्यक्त करते और उसी सभा में पुत्र मनुज समाज की जर्जरता को ललकारता था। 'मनुज अपने-आप में चारणों के पुराने सड़े संस्कारों के लिए जबरदस्त चुनौती था।' चारण परिवार में पला तथा करणीजी के मंदिर का प्रभावशाली धार्मिक भाव देशनोक में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने वाला मनुज वस्तुतः परिवर्तित चेतना को स्वीकार कर चुका था। उसकी चेतना का बल था श्रोताओं की दाद। जो उसे हर गीत की पंक्ति के बाद मिलती थी। यद्यपि मनुज के बचपन की एक घटना भी है जिसने मनुज को अंधभाविकता का आडम्बर रचने वाले पुजारियों और भक्तों के प्रति घृणा को प्रेरित किया था। बचपन में तब वह 'मनुज' नहीं मां का लाड़ला 'मान' था। 'मान' ने बाल्य-आकर्षण में अबोधतावश मंदिर के गोल, लम्बे, तिकोने, चौकोने पत्थरों के शालगरामों को खिलौना समझ उठा लिये थे। और लड्डुओं के लालच में सभी शालगराम 'मान' ने उन तथाकथित ठाकुर-भक्तों को देने लगा तो 'मान' को लड्डू के बदले में अपनी धार्मिक मां के मुक्के और थप्पड़ मिले थे। कहते हैं तभी से उसे पुजारियों और भक्तों से घृणा हो गयी थी।

कविता-पाठ के साथ-साथ मनुज की कवित्व शक्ति भी प्रबल थी। इसका प्रमाण हमें मिलता है जब मनुज ने 'नया समाज' में अपनी कविता छपने के लिए [illegible] 'नया समाज' में अगस्त 1950 के अंक में छपी। इसके [illegible] श्री मोहनसिंह सेंगर लिखते हैं कि मनुज जी से मेरा साक्षात्कार कभी नहीं हुआ था। एक दूसरे की रचनाओं अवश्य [illegible] ही हम एक-दूसरे को जानते थे। [illegible] एक क्रान्तिकारी [illegible] नई चेतना का आभास मिला। [illegible] का अनुरोध किया।

[illegible] 'मनुज' के [illegible] व्यक्तित्व और कविता [illegible] है।' मनुज ने अपने जीवन के 25 वर्ष का [illegible]

ो प्रकार के दूसरे पुरस्कार प्राप्त किये थे। उसका कविता-पाठ ओजस्वी और
मयी था। उसकी वाणी भैरवी-प्रधान होने की अपेक्षा मारु-प्रधान अधिक थी
बड़ी सभाओं में वह बोलता और शत-शत, सहस्र-सहस्र श्रोताओं की मु
अपने-आप आसमान की ओर उठती नजर आती।

मनुज एक ओर किसानों, मजदूरों व साधारण जनता की पीड़ा, शो
व्यक्त करते हुए उन्हें दिशा देता तो दूसरी ओर वह जिन्दगी के विकास च
दे रहा था—

ऐ जका उजाड़ै झूपड़िया नैं, उण महलां रैं तू लगा आग।
फण विचर काढियैं सापा रो तू आज मिटादे जैर झाग।

× × ×

इधर मृत्यु के महापुंज से नई जिन्दगी जूझ रही है।

मनुज के व्यक्तित्व की सफलता के और भी कारण थे। वह
शांति और जनवाद का अमर कवि था जो सार्वजनिक कार्यों में विशे
और क्रियाशील रहा करता था। मनुज ने 'करणी-मंडल' को नई दिशा दे
अपनी नई चेतना पूर्ण दृष्टि से ही सक्रिय रहकर उसने 'करणी-मंडल' को
का प्रेरणा-स्रोत बना दिया था। जन-जागरण के क्षेत्र में तब मंडल ने गांव मे
कार्य किये। सार्वजनिक उत्सवों पर यह संगठन अपना महत्वपूर्ण योगदान
था। 'इसी मंडल की नींव मजबूत करने वालों में एक विशिष्ट व्यक्तित्व
का था। श्री करणी हाई स्कूल, देशनोक के पुस्तकालय को प्रगतिशील
से भरा-पूरा करना मनुज का ही कार्य था।

रेलवे-विभाग में नौकरी मनुज ने विवशता के साथ की थी। मनुज के
सृजन में इससे व्यवधान भी आया। उसे अपना अधिकांश समय नौकरी
पड़ता था। कहते हैं रेलवे-विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार से भी मनुज को स
संघर्ष करना पड़ा। वहां की अनचाही गंदी स्थितियों की चोट भी कवि
अपने मित्रों व परिजनों में सहनी पड़ी किन्तु कवि मनुज ने उस भ्रष्टाचार
जिन्दगी के लिए त्याज्य ही माना था। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद भी
कवि-चेतना के विवेक को नहीं छोड़ा था। हां, 'उसके मन में भावनाएं तूफ
करती रहती, हिलोरें आ-आकर टकराती रहती, वह बेताब हो जाता कि
पर वस्तुस्थिति उसे कुंठित और बेबस कर देती—वह कटकर रह जाता। य
सिक संघर्ष उसकी उद्विग्नता और अस्थायी निराशा का कारण बनता था
अन्त उसका कवि-पक्ष इस अन्तर्द्वंद्व में विजयी होता था···।'

आर्थिक संघर्ष में निरन्तर जूझते रहने के कारण उसका स्वभाव गंभी
गया और तब वह अधिक उत्तरदायित्व से जन-चेतना को जगाने में प्रवृ
मनुज 'अपने एक-एक जानकार को प्रगतिशील साहित्य को पढ़ने और सा
बुराई को समझने की ओर प्रेरित करता रहा।'

विद्या के रूप में मनुज ने अपनी पहली संतान का मुंह सन् 1951 में देखा। मनुज का अपनी संतान के प्रति अगाध स्नेह था। लेकिन 'मनुज के जीवन का संघर्ष, अंधेरे से प्रकाश के संघर्ष के मानिंद था।' मनुज ही अपने पूरे कुटुम्ब का भरण-पोषण करने वाला एकमात्र व्यक्ति था। उसके पिता की बीमारी के बाद परिवार का और बोझ भी कवि के कंधों पर पड़ा। छह व्यक्तियों के परिवार का भरण-पोषण का विकट प्रश्न उसके सामने था। अपने पिता के उपचार के लिए मनुज ने नौकरी से छुट्टी ले रखी थी और वह पिता के उपचार में व्यस्त था।

छुट्टी बीत गई और मोहननगर पहुंचने के लिए उसके पास रेलवे अधिकारियों का तार आ गया था। तार का उत्तर देने के बजाय वह स्वयं नौकरी में उपस्थित होने की सूचना बीकानेर रेलवे-अधिकारियों को देने के लिए 18 मई, 1952 की रात 11 बजे वाली गाड़ी से अपनी दो बहनों, बहनोई और भानजी के साथ बीकानेर ही आ रहा था कि पलाना के बाद लगभग तीन मील की दूरी पर आकस्मिक रेल-दुर्घटना हुई, बड़ी भयानक दुर्घटना थी - और मनुज के सिर पर बर्थ पर से कोई बोझिली चीज गिरी। सिर पर सांघातिक चोट लगते ही मनुज के मुंह से केवल इतना ही निकल पाया—'मुझे अब कुछ नहीं दिखाई दे रहा है···मैं···म···गया' और वह अपनी बड़ी बहन की गोद में गिर पड़ा।

मनुज ने अपनी अन्तिम सांस डिब्बे से बाहर निकलने के बाद छोड़ी। मनुज की मृत्यु का सदमा साथ आ रही दूसरी बहन नहीं सह सकी और उसने भी वहीं अपनी अन्तिम विदा ले ली थी।

अल्पायु में ही मनुज की मृत्यु से साहित्य की प्रगतिशील होती वीणा का तार टूट गया।

जन-कवि मनुज का काव्य

कवि मनुज ने अपने अत्यल्प जीवन में अनेक रचनाएं लिखीं। मनुज की कविताओं के तीन संग्रह स्वयं मनुज के द्वारा हस्तलिखित रूप में संपादित हो चुके थे परन्तु मनुज के देहावसान के तत्काल बाद सन् 52 में ही जब एक साहित्यिक शिष्टमंडल कवि के गांव देशनोक गया तो उसे केवल तीसरा संग्रह ही मिल सका और इसी तीसरे संग्रह की विषय-सूची में कवि के पहले तथा दूसरे संग्रह का उल्लेख उस शिष्टमंडल को मिला। यह यद्यपि साहित्य-जगत् का दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि आज हम कवि की रचित सभी रचनाओं को पढ़े-समझे बिना केवल प्राप्य रचनाओं के आधार पर ही संतोष करके कवि के काव्य की पहचान बना रहे हैं। यहां कवि के काव्य की विशद् चर्चा करने से पूर्व कवि का काल-निर्धारण तथा कवि के काव्य की पृष्ठभूमि को भी संकेत रूप में दुहरा लेना उचित रहेगा।

कवि का जन्म विक्रम संवत 1984 (सन् 1927 ई०) में हुआ तथा मृत्यु सन् 1952 ई० में हुई। इस प्रकार कवि के जीवन के 25 वर्षों का युग (सन् 27 से 52 तक का) कवियुग स्वत ही निर्धारित हो जाता है।

स. ही. वात्स्यायन अज्ञेय ने 1937-38 के समय को 'संशय का युग', 'अस्वीकार का युग' तथा 'आत्म-अन्वेषण का युग' कहा। इसके विपरीत डॉ० नामवर-सिंह ने इस युग के मिजाज का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यथार्थवादी रुझान को माना। जयशंकर प्रसाद ने इस युग के यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए 'हंस' में प्रकाशित अपने लेख 'यथार्थवाद और छायावाद' में लिखा है—"यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात।" लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।" इस यथार्थवाद के सामाजिक आधार को स्पष्ट करते हुए जयशंकर प्रसाद ने लिखा कि "राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्त्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य, जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे, वही क्षुद्रता में महान दिखलाई पड़ने लगा। उस व्यापक दुःख संवलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवाद बन जाता है।"

जिन्दगी के अन्त में मनुज ने अपनी रचनी मशाल का मुँह सन् 1951 में दे
मनुज का अपनी कविता के प्रति अगाध स्नेह था। लेकिन 'मनुज के अंतर
संघर्ष, अंधेरे में प्रकाश के संघर्ष के माफिक था।' मनुज ही अपने पूरे कुटुम्ब का भ
पोषण करने वाला एकमात्र व्यक्ति था। उनके पिता को बीमारी के कारण
बाद था और बोझ भी कवि के कंधों पर पड़ा। छह व्यक्तियों के परिवार का भर
पोषण का विकट प्रश्न उनके सामने था। अपने पिता के उपचार के लिए मनुज
नौकरी से छुट्टी ले रखी थी और वह पिता के उपचार में व्यस्त था।

छुट्टी बीत गई और मोहननगर पहुंचने के लिए उनके पास रे
अधिकारियों का तार आ गया था। तार का उत्तर देने के बजाय स
स्वयं नौकरी में उपस्थित होने की सूचना बीकानेर रेलवे-अधिकारि
को देने के लिए 15 मई, 1952 की रात 11 बजे वाली गाड़ी से अपनी
दो बहनों, बहनोई और भानजों के साथ बीकानेर ही आ रहा था कि प्लेटफा
के बाद लगभग तीन मील की दूरी पर आकस्मिक रेल-दुर्घटना हुई, बड़ी भयानक
दुर्घटना थी — और मनुज के सिर पर बर्थ पर से कोई बोझिली चीज गिरी। सिर
पर सांघातिक चोट लगते ही मनुज के मुंह से केवल इतना ही निकल पाया—'मुझे
अब कुछ नहीं दिखाई दे रहा है... मैं... च... गया' और वह अपनी बड़ी बहन की
गोद में गिर पड़ा।

मनुज ने अपनी अंतिम सांस डिब्बे से बाहर निकलने के बाद छोड़ी। मनुज की
मृत्यु का सदमा साथ आ रही दूसरी बहन नहीं सह सकी और उसने भी वहां अपनी
अंतिम विदा ले ली थी।

अल्पायु में ही मनुज की मृत्यु से साहित्य की प्रगतिशील होती वीणा का तार
टूट गया।

नहीं भूला वहीं मरुजीवन का सामन्ती वातावरण तथा समसामयिक सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं के परिणामस्वरूप भी कवि की कविताएं रची गई हैं। इस वर्ग की कविताओं में 'निर्वासित', 'युग-परिवर्तन' 'विप्लव का कवि' आदि कविताएं रखी गई हैं।

उद्बोधनात्मक कविताओं में कवि का संदेश या कोई भाव-विशेष निहित है, जिसे कवि किसी वस्तु या व्यक्ति-विशेष के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मनुज की कविताओं में अन्य के उद्बोधन पर आधारित तथा स्वयं के उद्बोधन पर आधारित दोनों प्रकार की कविताएं हैं जिनमें 'प्रलय छंद', 'संघर्ष' और 'प्राचीन कवियों के प्रति' मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त 'नव-निर्माण' तथा 'रुक रे पलभर अश्रु नयन के' कविताएं भी इस वर्ग में गिनाई गई हैं।

'विप्लव-गान' पुस्तक के सम्पादकमंडल ने मनुज की कविता के पांच मूल प्रेरणा-स्रोत माने हैं—(i) विरह की भावना या वियोग की अनुभूति, (ii) प्रकृति-जन्य सौंदर्य, (iii) दमित प्रणय, (iv) आशा-निराशाजन्य हर्ष-विषाद और (v) सामाजिक तथा आर्थिक अन्यायों के प्रति विद्रोह भावना। इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति-विशेष और घटनाएं भी कवि की काव्य-वस्तु के उपादान बने हैं जिनका उल्लेख 'मनुज' के हस्तलिखित 'कविता-क्रम' में पाया जाता है।

सभी मनुज काव्य-अध्येता-विद्वानों ने कवि मनुज को सामाजिक, आर्थिक तथा सामन्ती युग के प्रति विप्लवी कवि कहा है यद्यपि कवि मनुज का प्रखर स्वर विप्लवी ही था लेकिन मुझे मनुज के काव्य में स्वाधीनता के साथ ही अकिंचन दलित व दमित-शोषित जन का सुखद स्वप्न भी आभासित हुआ है। और जिससे कवि की प्रखर प्रगतिशील चेतना कविता में दीप्त होती है इसलिए कवि मनुज के काव्य का यहां इसी दृष्टि से विशद् विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1947 में भारत को स्वाधीनता मिलने से पूर्व कविता का संदर्भ इसी जनवादी रुझान का प्रगतिशील स्वर अपनी पहचान स्थापित कर चुका था।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवरसिंह ने सन् 27 से 52 के बीच की जिन काव्य-प्रवृत्तियों की अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में चर्चा की है उनमें छायावादी गम्भीरता, उत्तर छायावादी अगम्भीरता का तथा 'तारसप्तक' के व इसके इर्द-गिर्द के कवियों के लिए कविता की गम्भीरता समकालीन संकट के साक्षात्कार की बौद्धिक परिणति की चर्चा है। नामवरसिंह ने 1947 में भारत को स्वाधीनता मिलने के साथ काव्य के ऐतिहासिक संदर्भ को बदलता हुआ भी पाया है। क्योंकि स्वाधीनता के आरम्भिक तीन-चार वर्ष भारी उथल-पुथल के थे। वस्तुत: भारत में स्वाधीनता साधारण अकिंचन, दलित व उपेक्षित मानव का एक सुखद स्वप्न था। कवि मनुज के काव्य की परख करते हुए 'विप्लव-गान' के संपादक-मंडल ने कवि की कविताओं को तीन भागों में बांटा—गीतात्मक, वर्णनात्मक तथा उद्‌बोधनात्मक।

मनुज की गीतात्मक कविताओं में मनुष्य के सुख-दुख, आशा-निराशा और हर्ष-विषाद के उतार-चढ़ावों का अद्‌भुत मिश्रण हुआ है। कवि मनुज का कवि-हृदय भावाकुल होकर इन भावगीतों की तरंगमालाओं में खुलकर प्रस्फुटित हुआ है। इन गीतात्मक कविताओं में मनुष्य-जीवन के प्रकृत सौंदर्य का सहज-बोध है, कवि का सुखद क्षणों की स्मृतियों में अश्रुसजल आत्मविभोर रूप है, तो कवि का प्यार के प्रतिकार की मनुहार पर उलाहना है जहां कवि शलभ बनकर साध्य पर न्योछावर होने को अपनी चरम साधना समझता है। और वही कवि 'अपलक हठीले नयनों' से अश्रु बनकर प्रवाहित 'गीले-गानों' की उधेड़बुन में अपने को पुनः खो देता है। कवि के भावाकुल हृदय की करुणा और वेदना इन गीतों पर छायी हुई है।

अपने परिवेश का कठोरतम यथार्थ घात-प्रतिघात प्रत्येक संवेदनशील कवि के मन पर अमिट छाप छोड़ते हैं। मनुज के गीतों में भी तात्कालीन परिवेश के इन घात-प्रतिघातों की भावछवि दृष्टिगत होती है। इन गीतों में सामान्य-मानव के प्रतिदिन के जीवन-व्यापार की अनुभूतियों के आकलन से ये गीत मानव-जीवन का यथार्थ प्रतिनिधित्व करते हुए प्रतीत होते हैं। एक ही भाव की अन्विति और भाषा का प्रसन्न-प्रवाह इन गीतों की विशेषता है। कवि की वर्णनात्मक कविताओं में देश, काल या समसामयिक घटना का वर्णन है जिन्हें परिगणित कविताएं कहा है। इन कविताओं में मानव-मन के अन्तर्जगत की अपेक्षा बहिर्जगत के वस्तु-रूपों और घटना व्यापारों का चित्रण है। कवि मनुज जो मरुभूमि का अंकुरित पुष्प था, मरुभूमि और इस भूमि में जनपदों को इन कविताओं में नियमित प्रतिष्ठित है। कवि ने अपनी कविताओं में 'सावणिया री तीज' व 'धोरां' को कहीं

समाज का जो स्वाभाविक विकास सम्भव था वह सब हाथ पाँव होकर गड्डमड्ड हो गया है। कवि मनुज ने इस तथ्य को स्वाधीनता के साथ ही समझ लिया था। वह मनुष्य के सम्स्कार तथा संस्कृति तक पर चोट करता है क्योंकि वह अनपढ लोगो को गुमराह करती है तथा विकास की धरती से उनको काटती है। वस्तुत. रूढ़िवादी धारणाएं मनुष्य के शोषण का सबल आधार-भूमि निर्मित करती हैं इसलिए कवि मनुज ने रूढ़िवाद पर प्रहार किया है।

कायर रूढ़िवाद का बंदी
क्या उसको इन्सान समझ लू।

कवि का अभिप्राय मनुष्य को मनुष्य न समझना नही था। वरन् रूढ़िवाद के शिकजो मे मनुष्य अपना मनुष्यत्व खोकर एक सकीर्ण वर्ग के स्वार्थो की विवशपूर्ति का जरिया बन जाता है। परिणामत. समाज एक बीमार समाज बन जाता है समाज मे रूढ़िया या धार्मिक अधविश्वासो के कारण बहुत गडबड़ हो रही है। धार्मिक आडम्बरो ने तो सस्कृति की अच्छाइयो तक पर मैली चादर चढा दी है।

सस्कृति के इस सकीर्ण एव सीमित 'पोखर' मे जीवन जीने वालो को कवि ने 'कीचड के लघु कृमि कीटो' की सज्ञा दी है—

और भर गया कीचड के लघु कृमि कीटो मे
गलित पुरातन सस्कृति का यह गदा पोखर

राजतत्र की सस्कृति, जिसको 'बूढ़ी बतखें' और 'दुर्बल दादुर' ओढ़े हुए फिर रहे हैं इसी सस्कृति को कवि ने पुरातन सस्कृति कहा है लेकिन कवि की इच्छा है—

इस पोखर के अवगाहन का मोह छोड़कर
नवल-सास्कृतिक सिंधु-सतरण आज करो हे !

वस्तुत: कवि ने 'भव का नव निर्माण करो हे !' शीर्षक कविता मे पोखर मे ऊपने वाले को झकझोर कर नए युग के क्रान्तिकारी परिवर्तनो का परिचय कराकर 'गलित पुरातन सस्कृति के गदे पोखर' से बाहर आकर 'नवल सास्कृतिक सिंधु सन्तरण' के लिए ललकारा है। पूरी जनस्थि [illegible] ाथ।

प्रसिद्ध विचारक नीत्से ने सत्रहवीं श [illegible] की थी—ईश्वर मर गया है यह घोषणा मात्र किसी सिनक का प [illegible] पुन. इसके पीछे वैज्ञानिक युग के प्रारम्भ की स्वीकृति थी। वैज्ञानिक युग और प्रजातन्त्र के प्रश्रय मे पलने धार्मिक आडम्बरो के चगुल से मुक्त हुए समाज मे पाहन पूजा का क्या महत्व ? यद्यपि मध्यकालीन भारत मे कबीर जैसे सत कवि ने भी पाहन पूजा की निरर्थकता पर करारा व्यग्य किया है किन्तु राजाओ की सामन्ती व्यवस्था मे धर्म के ठेकेदारो ने निरक्षर व अनजान अकिचन जन को भरमाने मे कोई कोर-कसर नहीं रखी है। कवि मनुज जन-सस्कृति सम्पन्न कवि जरूर था परन्तु वह अपने ही परिवेश के अधविश्वासजन्य देवी-देवताओ की रूढ़िगत वातावरण मे आने को तोलना

मनुज की प्रगतिशील चेतना की कविता

कवि मनुज समाजवादी भारत की सुखद संकल्पना लिये वस्तुतः शोषण-मुक्त समाज का प्रगतिशील पक्षधर कवि था। कवि की कतिपय छायावादी रोमान रुझान वाली कविताओं को 'कवि समय विकास क्रम' में दरकिनार कर दें तो कवि की शेष कविताओं को देश की प्रगतिशील काव्य चेतना की अग्रगामी सूचना के रूप में बेहिचक-बेझिझक स्वीकार कर सकते हैं। वस्तुतः सामन्ती विरुदावलियां गाने वाले चारण घराने में जन्मा मनुज वही कवि था जिसने—

लोहित मसि में कलम डुबाकर
कवि, तुम प्रलय छंद लिख डालो

का सिंहनाद कर अपने समय के समाज-शोषकों, सामन्तों एवं मदांध सत्तापतियों को झन्नाटेदार झकझोर दी थी। मोहनसिंह सेंगर ने तो यहां तक लिखा है कि प्रलय-छंद और किसी ने लिखे हों या न लिखे हों, पर कवि मनुज ने मानो इसी को क्रियान्वित करने के लिए अनेक प्रलय-छंद लिखे हैं। मनुष्य की जो दयनीय स्थिति कवि ने देखी—

मानव मिट्टी का रोड़ा है
बस जब चाहा तब तोड़ दिया
मानव टम टम का घोड़ा है
बस जब चाहा तब जोड़ लिया

यह कवितांश सहज व सपाट नहीं है वरन् व्यवस्था की नौकरशाही तथा सामंती प्रवृत्तियों पर करारी चोट के साहस का संसार कविता में प्रस्फुटित होता है सामान्य अकिंचन जन जिसको परिस्थितिवश 'मिट्टी का रोड़ा' तथा 'टम टम का घोड़ा' सा जीवन जीने पर विवश होना पड़ा है उसकी गरिमा को स्थापित करने के लिए कवि की अदम्य लालसा है।

स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही मनुष्य का सामाजिक तथा राजनैतिक संदर्भ बदल गया था। हमारा दुर्भाग्य है कि हमने क्रांतिकारी राजनैतिक परिवर्तन को बिना समाज की अनेक रूढ़ियां को ज्यों-का-त्यों हम गले लगाये हुए हैं जिनसे

है और उस वातावरण पर चोट करता है—

आडम्बर के आगार बने
जिसके ये सारे मठ मंदिर
पापों का प्रसव कर रहे हैं
जो कामवासनाओं के सागर,
जिनमें भ्रूणों के गात सड़े
जो देख रहा है खड़े खड़े
उस पत्थर के परमेश्वर का अभिसार मिटाने आया हूं—

वह धर्म क्या जो मनुष्य को मनुष्य पर अत्याचार के लिए प्रेरित करे? पाखंडों से पल्लवित ऐसा धर्म परस्पर सद्भाव को मिटाता है तथा दुर्बल, शोषित जन का दमन करता है। ऐसे धर्म के प्रति कवि का आक्रोश दृष्टव्य है—

जो मजहब कहलाता, मानव
को अत्याचार सिखाता है,
जिसमें प्रेरित होकर भाई,
भाई का खून बहाता है
जो पाखण्डों से पलता है
शोषित दुर्बल को दलता है
उस प्रबल पाप के पुंज
धर्म की धूल बनाने आया हूं।

ऐसे धर्म को अस्वीकार करने के साथ कवि मनुज ने ईश्वर को भी अस्वीकार [illegible] नहीं है वरन् नास्तिक है।

[illegible]

है [illegible] है ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
उस [illegible] का [illegible] आया हूँ —

वह धर्म [illegible] जो मनुष्य को मनुष्य पर अत्याचार के लिए प्रेरित करे, [illegible] मनुष्य को [illegible] सिखाता है तथा दुर्बल, शोषित जन का दमन करता है। ऐसे धर्म के प्रति कवि का आक्रोश दृष्टव्य है—

जो मानव कहलाता, मानव
को अत्याचार सिखाता है,
जिससे प्रेरित होकर भाई,
भाई का खून बहाता है
जो पापियों से पलता है
शोषित दुर्बल को दबाता है
उस प्रबल पाप के पुंज
धर्म की धूल बनाने आया हूँ।

ऐसे धर्म को अस्वीकार करने के साथ कवि मनुज ने ईश्वर को भी अस्वीकार किया है। यह अस्वीकृति निरी आक्रोशपूर्ण नहीं है वरन् तार्किक है।

आधुनिक राजनैतिक व्यवस्थाएं जब किसी समाज के लिए स्वीकृत की जाती है तो उसका ध्येय सदियों से शोषित व दलित वर्ग के मनुष्य को मनुष्य की गरिमा प्रदान करना होता है। समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर मनुष्य को यही गरिमा प्रदान की जानी थी—यह अलग बात है कि मनुष्य अब तक इस गरिमा की तलाश में है। लेकिन सन् 47 में मिली स्वाधीनता का यही सुखद स्वप्न मनुज ने देखा था। सामंती व्यवस्था को नकारकर वह अपने युग में परिवर्तन का मार्ग बना रहा था। परिवर्तन के इस पथ में ईश्वरनामी पत्थर को, जो बाधा पहुंचा रहा है उसे भगवान कैसे मान लिया जाय—

परिवर्तन पथ का वह पत्थर
क्या उसको भगवान समझ लूं ?

मनुज वैचारिक स्तर पर परिपक्वता पा चुका था। अपने जीवन संघर्षों में उसकी प्रगतिशील दृष्टि पैनी भी हुई। वह मनुष्य को प्रत्येक क्रिया का नियामक

है और उस वातावरण पर चोट करता है—

आडम्बर के आगार बने
जिसके ये सारे मठ मंदिर
पापों का प्रसव कर रहे हैं
जो कामवासनाओं के सागर,
जिनमें भ्रूणों के गात गड़े
जो देख रहा है खड़े खड़े
उस पत्थर के परमेश्वर का अभिसार मिटाने आया हूँ—

वह धर्म क्या जो मनुष्य को मनुष्य पर अत्याचार के लिए प्रेरित करे। पाखंडों से पल्लवित ऐसा धर्म परस्पर सद्भाव को मिटाता है तथा दुर्बल, शोषित जन का दमन करता है। ऐसे धर्म के प्रति कवि का आक्रोश दृष्टव्य है—

जो मजहब बहलाता, मानव
को अत्याचार सिखाता है,
जिससे प्रेरित होकर भाई,
भाई का खून बहाता है
जो पाखंडों से पलता है
शोषित दुर्बल को छलता है
उस प्रबल पाप के पुंज
धर्म की धूल बनाने आया हूँ।

ऐसे धर्म को अस्वीकार करने के साथ कवि मनुज ने ईश्वर को भी अस्वीकार किया है। यह अस्वीकृति निरी आक्रोशपूर्ण नहीं है वरन् तार्किक है।

आधुनिक राजनैतिक व्यवस्थाएँ जब किसी समाज के लिए [illegible] की वाणी हैं तो उसका [illegible] सदियों से शोषित व दलित वर्ग के मनुष्य को मनुष्य की गरिमा प्रदान करना होता है। समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर मनुष्य को वही गरिमा प्रदान की जानी थी —यह अलग बात है कि मनुष्य अब तक इन व्यवस्थाओं को तलाश रहे हैं। लेकिन सन् 47 में जिसी स्वाधीनता का सही सुन्दर स्वप्न मनुज ने देखा था। [illegible] व्यवस्था को स्वीकार कर जाते हुए। वे परिवर्तन का [illegible] बना रहा था। परिवर्तन के इस पथ में ईश्वरवादी व्यवस्था को, जो बाधा पहुँचा रहा है उसे भगवान ठीक मान लिया जाय —

परिवर्तन पथ का वह पत्थर
क्या तुमको भगवान समझ लूँ ?

मनुज ईश्वरीय सत्ता पर [illegible] का प्रहार था। [illegible] उनकी धर्मनिरपेक्ष दृष्टि ऐसी ही हुई। वह मनुष्य को [illegible] करता है [illegible] मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं है मनुष्य ही स्वयं अपना ईश्वर है

चाह रहे हो तुम जीवन की ज्योति जगाना ?
नगर नगर घर डगर-डगर में
शांति स्नेह और सुख का स्रोत बहाना ?
निशिचर, उल्लू, चमगादड़, पर नहीं चाहते
जिनका राज अखण्ड आज है भारत खण्ड में।

मनुज के उर की परिवर्तन की चाह में पुरानी संस्कृति के बजाय नव संस्कृति सिंधु के लिए थी तो केवल मानव के सुखद भविष्य की भावभूमि में ही थी।

समाज में राजतंत्री व्यवस्था के अन्तर्गत धर्म की यह धारा कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है और ईश्वर ने ही प्रत्येक मनुष्य का भाग्य लिखा है। ऐसे भाग्यवादी समाज में सम्पन्न व्यक्ति अपने को भाग्यशील कहता है और गरीब व्यक्ति को भाग्यहीन कहा जाता है। जबकि यह सब कुछ कृत्रिम है। प्रकृति ने अपनी संपदा का कोई मूल्य किसी मनुष्य से नहीं लिया है। केवल सम्पन्न वर्ग की अस्मिता को कायम रखने के लिए तथा सम्पन्न वर्ग के द्वारा अपने से दीन-हीन वर्ग का शोषण करने को एक नैतिक जामा पहनाने का यह एक षड्यंत्र मात्र है। मानव के कारों के प्रति जागरुक प्रगतिशील दृष्टि से सम्पन्न जन कवि मनुज को स्थितियां कैसे रास आती ? कवि मनुज ने समाज में व्याप्त वर्गभेद को कविताओं में रेखांकित किया है तथा सम्पन्न वर्ग की सुविधापूर्ण शोषकीय स्थि के साथ-साथ शोषित की स्थितियों का भी चित्रण अपनी कविता में किया है—

यह जुल्म जमींदारों का है
यह धनिकों की मनमानी है
बेकस किसान के जीवन की
यह जलती हुई कहानी है
क्या कभी सुना भी है तुमने
मानव, मानव को खाता है
पीकर लोहू, चटकार जीभ
फिर हंसकर दांत दिखाता है
वे जमींदार कहलाते हैं
मूछों पर ताव लगाते हैं
सौ सौ को मार डकार जायें

इनकी उस ईश्वर के स्वरूप
राजा से रिश्तेदारी है।

कवि मनुज की प्रगतिशील चेतना मे इतना साहस [illegible] के आस-पास जमींदारी प्रथा में पल रहे भारत के गांवो मे जमींदारो के ज़ुल्म के खिलाफ़ वह अपनी कविता करता है। सशक्त कवि अपने समय और परिवेश से कभी नही कटता है। अपने परिवेश के भीतर व्याप्त असमानताएं कवि को कष्ट पहुंचाती हैं वह तिलमिलाता है और उस असमानता पर चोट करता है—

इनकी वह लाल हवेली है
अम्बर मे ऊंचा शीश किये
इन कगालों की झुठिया का
जो आखो मे उपहास लिये

सामन्ती-व्यवस्था ने समाज को अनेक विकृतियां दी हैं। बेगार प्रथा भी ऐसी ही क्रूर एवं अमानवीय प्रथा है। कवि मनुज ने लिखा है—

बेगार प्रथा की बांहों मे
जीवन की साध सिसकती है

सदियो के सामन्ती शोषण ने मनुष्य को 'मिट्टी का रोडा' 'टम टम का घोड़ा' तो बनाया ही है उसकी स्थिति तो 'नाबदान के कीड़े' के समान 'बिलबिलाती' सी रही है और—

वह पूंछ हिलाता कुत्ता है
अपने मालिक का चिर गुलाम।
वह अपनी हस्ती बेच चुका अपने मालिक के हाथों मे।

कवि की साधारण-जन की इस स्थिति के प्रति पूर्ण सहृदयता है—

ऐ खडी हवेलियां हमे आज
पण झूपड्ल्या री दुख दूणो।

मनुज समाज मे जहां-जहां भी शोषण के अवसरों को प्रवेश मिलता है उन्हें बार-बार झकझोरता है। कभी-कभी इसमें पुनरावृत्ति का भ्रम बन जाता है परन्तु सम्पूर्ण काव्य को समझने के पश्चात् यह तथ्य रेखांकित होता है कि कवि मनुज शोषण रहित समाज की परिकल्पना मे ही शोषण की भिन्न-भिन्न स्थितियो पर बार-बार चोट करता है, यहीं जन कवि मनुज का विप्लवी स्वर प्रखर होता है।

भारतीय समाज की विशेषता रही है कि वह परम्परावादी रहा है किन्तु यह कई मायनो में दुर्भाग्यपूर्ण भी रहा क्योंकि चालाक किस्म के लोगो के एक वर्ग ने इस स्थिति में सदा लाभ उठाया है और शोषण की स्थितियो को गहराया है। भारतीय समाज की इसी सांस्कृतिक कमजोरी के कारण यह खास किस्म का शोषक वर्ग [illegible]न है तथा अपने स्तर पर सम्मानित भी। कवि मनुज ने जब इन

स्थितियों से साक्षात्कार किया तो वह धधक उठा और—

जगा रहा हूं अभिनव की वह ज्वाल निरन्तर,
जिसमें जलकर भस्म हो जाय पुरातन।

'अभिनव' की स्थापना में 'पुरातन' को 'भस्म' करने की बात कहीं भी मन में पुरातन के प्रति राग हो तो सुहाती नहीं है। लेकिन मनुज शोषण का कोई भी 'पुरातन' अवशेष तक नये समाजवादी समाज में छोड़ना पसन्द नहीं करते थे। इससे प्रखर स्वर क्या हो सकता है? क्योंकि शोषक अविचल है—

शोषक रे, अविचल!
शोषक रे, अविचल, अजेय, गर्वोन्नत प्रतिपल!
लख तेरा आतंक त्रसित हो रहा धरातल!
मृत मानवता के अधरों पर
मृत्यु झाग से,
वसुन्धरा पर कौन पड़े
तुम शेष नाग से

कवि मनुज ने शोषक को 'वसुधा का वपु' 'वासना पंक' में निमज्जित 'नरक के कीट' 'दुर्दान्त दस्यु' आदि संज्ञाओं से इसलिए अभिहित किया है कि समय-समय पर शोषक वर्ग का यही चरित्र मनुष्य के साथ उसके व्यवहार में प्रकट करता है। शोषक के स्वरूपों को स्पष्ट करते हुए कवि मनुज ने लिखा है—

कै किसी व्यवस्था रा प्रेमी कै शोषक सत्ता रा हामी
कै लम्बा तिलक लगावणिया है काती रा कुत्ता कामी
सोने चांदी रे टुकड़ां पर मानव इज्जत रो मोल करे
तन रो तांबे सू तोल करे

शोषण की स्थितियों पर कवि ने अपनी कलम खूब चलाई है कि किस प्रकार शोषणकर्ता लोगों की विवशता का लाभ उठाकर अपने लिए ऐश्वर्य के साधन जुटाते हैं।

जिनने मानव की लाशों पर
ये भव्य भवन निर्माण किये।

कवि का परिवेश पूर्णतया सामन्ती था। इसलिए सामन्तों पर, सामन्ती व्यवस्था पर कवि कभी भी चोट करने से नहीं चूका है। जमींदार किसको कहते हैं—

क्या कभी सुना है तुमने
मानव मानव को खाता है
पीकर लोहू, चटकार जीभ
फिर हंसकर दांत दिखाता है
... ... कहलाते हैं

सौ सौ को साथ हजार जायें

पर (कभी) हजार (न) खाते हैं।

स्वाधीनता के साथ नया युग प्रारम्भ हुआ। आज अनेक प्रकार से असन्तोष और इस असन्तोष में पुरातनपंथी राजाओं के राज की वापसी की कामना रते नहीं अघाते। उन लोगों के लिए कवि मनुज की कविता की ये पंक्तियां—

> वे रक्तपान से सनी हुई
> सामन्त काल की सन्ध्याएं
> लोहू में लथपथ नव प्रभात !
>
> वे नर-पति, जिसमें मानवता
> थी लेशमात्र भी शेष नहीं
> जो केवल पशुता के बल पर
> साम्राज्य बनाया करते थे।

ऐसे राजा-महाराजाओं के बनाए गढ़-कोट-किले-मीनार आज भी 'धरती की ती पर गन्दे फोड़े' हैं—

> घर-घर में डाके मार-मार
> गढ़-कोट-किले-मीनार बना,
> अधिकार जताया करते थे।
> गढ़-कोट-किले-मीनार कि जो
> अब भी धरती की छाती पर
> गन्दे फोड़ों से पड़े हुए

वह युग का युग कुछ कैसा था—

> उस युग को जिसमें जमींदार
> अन्धेर मचाया करते थे,

राजस्थान के समाज में सामन्ती व्यवस्था विशेष थी। सामन्ती व्यवस्था में [illegible] विभाग की स्थिति भी दयनीय थी। नारी की इज्जत तब मूल्य [illegible] थी, यह सामन्तों की इच्छा पर निर्भर था। कवि मनुज ने नारी की इस [illegible] दारुण स्थिति का चित्रण भी अपनी कविताओं में किया है—

> वे [illegible] इस कोप [illegible] वैभव [illegible] के [illegible]
> [illegible] की इज्जत [illegible] लिए [illegible]
> पोषित करने के [illegible]
> [illegible] [illegible] हुए [illegible]।
>
> [illegible] की उच्च अटारी पर
> रहो, [illegible]

तुमने उस मादक मस्ती के
मधुमय गीत बहुत लिख डाले
किन्तु कभी क्या देखे तुमने
वसुधरा के उर के छाले ?

तुम उन पीप भरे छालो मे
रस का अनुसंधान कर रहे
मौत यहां नाच रही
तुम परियों का आह्वान कर रहे

कवि-कर्म को कवि मनुज ने श्रेष्ठ मानकर कवि को 'पथ-विचलित मानव के अपूर्व पथ-दृष्टा' 'नवीन युग के सृष्टा' कहा है इसलिए ही शोषण के तीखे आरो मे पिसते 'शैशव' गली गली, बाजारों मे बिकते यौवन, धरती सिसक रही है. ऐसे हालातों मे कवि मनुज कवियों को ललकारता है—

तुम वसुधा के रिक्त पात्रों में
मत विष तिक्त हलाहल डालो

और कविता की प्राथमिकता को समझ जीवन के यथार्थ को स्वीकार करो —

अतः कल्पना मेघ परी को
तुम धरती के पास बुला लो
शोणित मसि में कलम डुबाकर
कवि युग प्रणय छन्द लिख डालो

[illegible] कवियों की हेयता तथा [illegible], [illegible] तथा वाणी व्यापार तक को प्रणय छन्द का कवि मनुज धिक्कारता है —

उस युग को जिसमें जमींदार
अंधेर मचाया करते थे
और जिनका घर घर घूम घूम
कविगण यश गाया करते थे

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

फिर निमित्त दान के मिले हुए
उन टुकड़ो पर जीकर अपना
वे गुजर चलाया करते थे
कविराज कहाया करते थे।

परन्तु इन कविराजो ने क्या कभी जनता के जीवन के गान गाये ? उन
क्या कभी स्वाधीनता की ज्वाला जगी था—

क्या निर्बल मानव के दुख पर
उनके आसू बह चले कभी
कब दीनजनो की आहो मे
उनकी यह कार्य कला जागी

वरन इन कवियो ने राजाओ के रासरंग को देखकर 'सरस्वती मा क
प्रणाम' कर अन्नदाता के दो-चार प्रशसा भरे गीत ही रचे। 'जनता के' इ
'अपराधियो' के 'कलुषित कामो' जैसे—'मानव की लाशो पर' भव्य भव
के निर्माण किये उनके इन कवियो ने 'फिर-फिर' 'यशगान किये' है उन्हे
सुबह के भूले शाम को घर लौट आने के लिए प्रेरित करता है कवि मनुज म
आदर्श हृदयी कवि—

रे कवि तुम भूले-भटके हो
अब भी सध्या है लौट चलो

कवि मनुज मरुभूमि का सचेतन कवि था किन्तु स्वय 'हरीतिमा मे बहुत दू
'मरु का चिर-तृषित धूलिकण' उर के मधु का मर्म नही जानता परन्तु विश्
व्यापी कटुता की उसे पहचान थी—

विश्व व्यापिनी विषम व्यवस्था
की कटुता को जान सका हू

अमृत का अनासक्त (अमृत पर आसक्त नही हू) मनुज का कवि अमर्त्य प
नही चाहता था किन्तु मानव अधिकारो का प्रबल समर्थक मनुज मानव स्वतन्
की कामना करता है—

किन्तु चाहता हू जीवन मे
जो मेरा अधिकार चिरन्तन
जिसके बिना प्राण व्याकुल है
जिससे रहित व्यर्थ है जीवन
किन्तु मनुज बनकर जीवन मे
जीने का अधिकार मागता

समाजवादी व्यवस्था का प्रबल समर्थक एव प्रगतिशील विचारधारा क
पोषक कवि मनुज ने अपने काव्य मे पूजीपतियो को भी आडे हाथो लिया है। विश्

व्यापी महाजनी सभ्यता—जिसे प्रेमचन्दजी ने सबसे ज्यादा गयी-गुजरी सभ्यता कहा है, जिसमें महाजनी सभ्यता के पोषक समाज को अपना शिकार समझते हैं और खुद ऐशो-आराम का जीवन जीते हैं। मनुज ने लिखा है—

कंगालों के जूठे टुकड़ों पर
अधिकार जमाने वाले हैं

किसी भी प्रकार की मानवीयता से दूर ऐसे धन-कुबेरी समाज-दस्यु हैं, इन्हें हैं—निश्चय ही मनुज की यह घृणा स्वाभाविक है—

मदमत्त हुआ अपने धन में
जो भूल गया है मानवता
जो चूर हुआ मत्सर में
जो क्रूर हुआ है दानव-सा
केवल अपने ही स्वार्थ काज
जो कुत्ता है बन गया आज
उस नर का कर संहार
भूमि का भार मिटाने आया हूं

कवि अपने साथ सम्पूर्ण मरुभूमि को भी जगाता है क्योंकि—

छाती पर पैणा पड़्या नाग
रे धोरां आळा देस जाग

और इस जागरण के साथ राजनीतिक स्तर पर जो शोषण हो रहा है उस लिए भी वह ललकारता है—

सत्ता का नंगा नाच हो रहा
आज धरा की छाती पर
दीनों की करुण कराहों का
वह गूंज रहा अम्बर में स्वर
धन के घमण्ड में बने अन्ध
शासन के मद में जो मदान्ध

राज्य लिप्सा के नशे में लीन मानव को चित्रित करते हुए कवि ने कहा—

राज्य लिप्सा के नशे में
[illegible] है आज दानव
[illegible] के पाट में जो

है। कवि का यह प्रगतिशील मानव आस्था का स्वर गद्गद् करता है चाहे आज वे सारे स्वप्न भ्रम बनकर भग हो गए हों किन्तु सन् 50 के आसपास मनुज की भांति साहित्य में मानव अधिकारों के प्रति सचेतन दृष्टि सम्पन्न काव्य-सृजन हुआ होता तो मनुष्य इतना पथभ्रमित नहीं हुआ होता। यद्यपि मैं यह कहकर समकालीन राजनीति तथा संस्कृति-प्रेम के नाम पर सामन्ती तथा पूंजीवादी शक्तियों के प्रबल षड्यन्त्र की इस भ्रम भग करने की स्थितियों को अपराध मुक्त नहीं कर रहा हूं।

'धोरां आळा देश' के स्थान पर देश की भौगोलिक सीमाएं स्वाधीनता प्राप्ति के साथ बदल गईं। कवि मनुज ने अपनी कविता में इसे स्वीकार कर 'भव' के नव निर्माण का आह्वान किया है। राजतन्त्र यद्यपि चला गया लेकिन यहां का मनुष्य ('धिसी सामन्ती') व्यवस्था की बोदी लक्ष्मण लकीर में फंसा हुआ था।

यद्यपि स्थिति आज भी यही है। कवि मनुज ने सम्पूर्ण सामन्ती संस्कृति को 'गलित पुरातन संस्कृति का गन्दा पोखर' कहा है। काश, अन्य भी यह समझ सकते जिसके मोह को छोड़कर मनुज ने नव लोक संस्कृति के सिंधु (सागर) में सतरण का आह्वान किया है। कवि का शब्दशिल्प कविता के मर्म को पैना कर रहा है कि 'पोखर' को छोड़ दो और 'सिंधु' का मोह धरो। कवि मनुज का विकास के प्रति राय, मानव-मुक्ति के प्रति सहज आस्था द्रष्टव्य है—

> लोक-युद्ध की इस बेला में
> तुम भी मुक्ति प्रयाण करो हे
> भव का नव निर्माण करो हे

नव-निर्माण के प्रति कवि का विश्वास अकिंचन के विश्वास की कठोरता जन शक्ति के समक्ष राजमुकुट पीले पड़े पत्तों की भांति कांप रहा है, 'उलूक' खोह में दुबक रहे हैं, पतझड़ के पत्तों के समान मनुष्य के अभिशाप झड़ रहे हैं क्योंकि अभिनव मुक्ति की अंगड़ाई लेकर इन्सान उठ रहा है, जीवन जाग रहा है। कवि मनुज जिसे समकालीन युग को समझने की क्षमता थी ने अपनी आशंकाएं तो व्यक्त कर दी थी—

> किन्तु अब भी
> गीध कुछ मंडरा रहे हैं
> मृतक युग के गलित शव पर

कवि अपनी कविता से समूह में जीवन जीने का राग विकसित करता है—

> जीवन का अभिशाप एक हो
> जीवन का वरदान एक हो
> धर्म एक, ईमान एक हो
> मानव का भगवान एक हो

जलाने वाला साहसी कवि स्वीकार किया है।

कवि मनुज के 'कवि' की सफलता के पीछे कवितात्मक सावधानी भी थी। मनुज देपावत के साथ एक गंभीर नैतिक साहस जुड़ा हुआ था जिसके कारण वह अपने आसपास की दुनिया में हिस्सा लेते हुए अपनी कविता को देशज स्वरूप भी प्रदान कर रहा था और कविता के भीतर एक नई दुनिया रच कर उसके प्रति आकर्षण व उत्साह-उमंगें भी जगा रहा था जबकि मनुज की ये सारी कविताएं सीधे-सीधे आक्रोश या विप्लव की जानी जाती हैं। वस्तुतः ये कविताएं जन से जुड़ने में पहल कर सकीं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि "सत्ता बहुरूपी होती है। राजतन्त्र गया और लोकतन्त्र आया, पर सच तो यह है कि आज भी सामन्तवाद सम्पूर्ण व्यवस्था में और अधिक क्रूरता के साथ बरकरार है। मनुज ने इसी सामंती व्यवस्था पर कल चोट की थी और आज उस सचोट काव्य को जब याद किया जाता है तो हम अपनी प्रखर प्रगतिशील कवि-परम्परा से ही जुड़ते हैं।"

रचना खण्ड

मैं विप्लव का कवि हूं !

मैं विप्लव का कवि हू मेरे गीत चिरन्तन !
मेरी छन्द-बद्ध वाणी में
नहीं किसी कृष्णाभिसारिका के
आकुल अन्तर की धड़कन;
अरे, किसी जनपद-कल्याणी के
नूपुर के रुन-झुन स्वर पर
मुग्ध नहीं है मेरा गायन !
मैं विप्लव का कवि हूं मेरे गीत चिरन्तन !
मैं न कभी नीरव रजनी के
अंचल में छिपकर रोता हू;
आसू के जल से अतीत के
धुधले चित्र नहीं धोता हूं;
चित्रित करता हूं समाज के
शोषण का यह शोणित-प्लावन !
विप्लव का कवि हू मेरे गीत चिरन्तन !
ाज विकट कापालिक बनकर
महाप्रलय के शंखनाद से
रघट के सोये मुर्दों को जगा रहा हूं;
गा रहा हूं अभिनव की वह ज्वाल निरन्तर;
सिमें जलकर स्वयं भस्म हो जाय पुरातन !
मैं विप्लव का कवि हूं मेरे गीत चिरन्तन !

भव का नव-निर्माण करो हे !

' का नव-निर्माण करो हे !

पि बदल चुकी है कुछ
ालिक सीमा-रेखाएं;
घेरे हुए हो तुम अब भी
घसी व्यवस्था की बोदी
लक्ष्मण-लकीर से;
रुद्ध हो गया जीवन का
अविकल्प प्रवाह तो;

और गूंजते युग-निर्माता नव राग ये,
इन रागों में वार-वधू के
नूपुर की झंकार नहीं है !
शंखनाद है ये तो शत-शत संघर्षों के।

और खुल रहे मनुज-मुक्ति की
नगरी के फिर सिंहद्वार भी;
बदल रहे विश्वास पुराने
अरे, तृषा की इन घड़ियों में कितने शंकर—
गरल पान कर रहे निरन्तर;

लोक-युद्ध की इस वेला में
तुम भी मुक्ति प्रयाण करो हे !
भव का नव-निर्माण करो हे !

आज शोषण की सबल दीवार ढहती जा रही है

आज शोषण की सबल दीवार ढहती जा रही है

आज धूसर मेघ धरती पर उतरकर
कर रहे तूफान का आह्वान प्रतिपल,
कांपते हैं पीत-कनक किरीट
विप्लव-गीत उन धरणी-धरों के;
अर्थ-लिप्सु धनाधिपों के,
समर-तूर्य-निनाद सुन जन-जागरण का
छिप रहे उलूक खोहों में दुबककर,
सिकुड़ता है, आज स्वर्ण-विहीन सत्वर,
घोर भीमाकार, रजनी का,—
तमस्-परिधान कज्जल,
जग रहा सौभाग्य विधवा धरित्रि का।

अब न रुक सकता
किसी भी देवता के शाप से वह;
कर रही है जनन इस गर्भस्थ शिशु का
क्रान्ति की यह कुशल धात्री,
किन्तु अब भी
गीध कुछ मंडरा रहे हैं
मृतक युग के गलित-शव पर।

अब न गायेगा कभी
कवि गीत यश के—
बोदे गीत गायक चारणों के;
गूंजता है कण्ठ-रव से
मुक्ति का संगीत अब तो
शीत ईथर के असीमित
तम-किनारों पर लहरकर;
मधुर मानव स्नेह-धारा
मुक्त बहती जा रही है।

आज शोषण की सबल दीवार ढहती जा रही है!

रुक रे, पल भर अश्रु नयन के !

रुक रे, पल भर अश्रु नयन के !

उर के सूने अंतराल में
यह सुधि की बदली घिर आई;
किसी अपरिचित की छाया-छवि
आंखों में है उतर समाई,

आज उसे पहचान रहा हूं, पलक बंद कर वातायन के
रुक रे, पल भर अश्रु नयन के

कवि ने तेरे साथ बहा दीं
कितनी मधु से भीगी रातें;
जीवन की सूनी घड़ियों में
आंखों की अविरल बरसातें;

किन्तु आज तेरे प्रवाह में, बह न जाए मधु-गीत मिलन के !
रुक रे, पल भर अश्रु नयन के !

ठहर जरा, इस मादक मधु को
अपने लघु जीवन में भर लूं !
इस मायाविनि, मधुर छवि को
मानस पट पर चित्रित कर लूं !

शोषक रे, अविचल !

शोषक रे, अविचल !

शोषक रे, अविचल, अजेय, गर्वोन्नत प्रतिपल !
लख तेरा आतंक त्रसित हो रहा धरातल !

भार - वाहिनी धरा
किन्तु तुमको ले लज्जित;
अरे नरक के कीट !
वासना-पंक निमज्जित !

मृत मानवता के अधरों पर
मृत्यु - झाग - से;
वसुन्धरा पर कौन पड़े
तुक शेष नाग - से;

वसुधा के वपु पर रे ! कलुष-दाग तुम निश्चल !
शोषक रे, दुर्दान्त-दस्यु, गर्वोन्नत प्रतिपल !

मेरे रेतीले 'धोरों' पर
उल्लास बिछाती सुबह-शाम।

विस्मृत की मिटी लकीरों-से
रे, आज कहां वे दिन बीते;
जगती के विष की तुलना में
ये जीवन के मधु-घट रीते।

अरमान सुलगते शोलों-से, मानव मन के अवसादों में,
हे गांव, तुझे मैं छोड़ चला, लाचार भरे इन भादों में!

क्या तुझे सुनाऊं आज सखे!
ये पीड़ा के पहचाने हैं;
ये दग्ध - हृदय के छाले हैं
ये दर्द भरे अफसाने हैं!

यह जुल्म जमींदारों का है
यह धनिकों की मनमानी है,
बेबस किसान के जीवन की
यह जलती हुई कहानी है;

क्या कभी सुना भी है तुमने
मानव, मानव को खाता है,
पीकर लोहू, चटकार ओंठ,
फिर हँसकर दांत दिखाता है।

वे जमींदार कहलाते हैं
मूछों पर ताव लगाते हैं,
सौ-सौ की नाप हजार बार
पर(कभी)हजार (न) पाते हैं।

पर इनको कौन कहे जालिम,
ये शोषक, अत्याचारी हैं,
इनको उस ईश्वर के बदले
राजा के रिश्तेदारी हैं।

इनकी वह लाल हवेली है
अम्बर में ऊंचा शीश किये;
इन कंगालों की कुटिया का
जो आंखों में उपहास लिये।

वह रात मनाती रंगरलियां, मधु-प्यालों के आह्लादों में,
हे गांव, तुझे मैं छोड़ चला, लाचार भरे इस भादों में?

कर्मठ किसान के खेतों पर
आतंक-ध्वजा फहराती है,
इनके वे टैक्स-लगान देख-
कर मानवता थर्राती है।

'भूगे' का भूत लगा सिर पर
आंखों में क्रूर विनाश लिये;
बेदखली के बादल छाये
सत महाप्रलय का श्वास लिये।

बेगार प्रथा की बांहों में
जीवन की साध सिसकती है,
नंगे-भूखों की आहों में
आंखों की आग बरसती है।

ये जान सकेंगे कभी नहीं
इस जगती का वैभव क्या है?
कोई जाकर इनसे पूछे
दो पैरों का मानव क्या है?

मानव मिट्टी का ढेला है
बस जब चाहा तब तोड़ दिया;
मानव टमटम का घोड़ा है
जब जब चाहा तब जोत दिया।

वह मानव का कीड़ा है
निर्मित करता है सुन्दर साज,

वह पूंछ हिलाता कुत्ता है
अपने मालिक का चिर गुलाम।

वह अपनी हस्ती बेच चुका, अपने मालिक के हाथों में,
हे गाव, तुझे मैं छोड़ चला, लाचार भरे इस भावों में।

पर कौन यहां सुनने वाला
वे तो मस्ती में गाते है।
कगाल खड़े है यहां इधर
पर वे मधु-रात मनाते हैं।

वे उस दुकान पर जाते हैं
जिस पर यौवन विकता रहता,
पैसे-पैसे के बदले मे
जो मिट्टी में मिलता रहता।

उनके वे कागज के टुकडे
उस ज्वाला में जल जाते हैं,
बरसों से मिले हुए मोती
उस पानी में घुल जाते हैं।

उद्दाम वासना का यौवन
उस धारा में बह जाता है,
नारी का नंगा तन झकोर
वह काप-काप रह जाता है!

फिर भी वे अपनी सत्ता का
कुछ सार जमानेवाले हैं,
कगलों के झूठे टुकड़ों पर
अधिकार जमाने वाले हैं।

यह मानव की दुनिया कठोर
यह मानव का ससार विषम;

इनका वह लाल हवेली

अम्बर में ऊंचा शीश किये

इन कंगालों की कुटिया प

जो आंखों में उपहास लिये

वह रात मनाती रंगरलियां, मधु-प्यालों

हे गांव, तुझे मैं छोड़ चला, लाचार भरे

कर्मठ किसान के खेतों

आतंक-ध्वजा फहराती

इनके वे टैक्स-लगान दे

कर मानवता थर्राती

'भूंगे' का भूत लगा सिर

आंखों में क्रूर विनाश

बेदखली के बादल

बन महाप्रलय का श्वास

बेगार प्रथा की बांहें

जीवन की साध गिरा

ों की आहें

की आग बरस

मैं प्रलय वह्नि का वाहक हूं ?

मैं प्रलय वह्नि का वाहक हूं !
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं !

शोषित दल के उच्छ्वासों से
वह कांप रहा अवनी-अम्बर;
उन अबलाओं की आहों से
जल रहा आज घर, नगर-नगर

जल रहे आज पापों के पर
है फूट रहा भयकारी स्वर;

इस महामरण की वेला में त्योहार मनाने आया हूं !
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं !

आडम्बर के आगार बने
जिसके ये सारे मठ-मन्दिर;
पापों का प्रसव कर रहे हैं
जो काम-वासना के सागर;

जिनमें भ्रूणों के गात गड़े
जो देख रहा है खड़े-खड़े

उस पत्थर के परमेश्वर का अभिसार मिटाने आया हूं !
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं !

जो मजहब कहलाता, मानव
को अत्याचार सिखाता है,

दुर्बल के निर्बल कंधों पर
दुस्सह जीवन का भार विषम।

वह राग बेबसी का उठता महफिल के मधुर निनादों में,
हे गांव, तुझे मैं छोड़ चला, लाचार भरे इस भावों में!

पग से औरों को ठुकराकर
जो आगे बढ़ जाता हंसकर

मैं(अब)उसका अभिमान जलाकर क्षार बनाने आया हूं।
मिट्टी के पुतले मानव का का संसार मिटाने आया हूं!

जिसमे प्रेरित होकर भाई,
भाई का खून बहाता है;

जो पाखडों से पलता है,
शोषित, दुर्बल को दलता है

उस प्रबल पाप के पुन्ज, धर्म की धूल बनाने आया हूं!
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं!

सत्ता का नंगा नाच हो रहा
आज धरा की छाती पर;
दीनों की करुण कराहों का
यह गूंज रहा अम्बर में स्वर;

धन के घमड से बने अंध
शासन के मद से जो मदांध

सम्राटों का कर खून, रक्त की धार बहाने आया हूं!
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं!

मद-मस्त हुआ अपने-पन में
जो भूल गया है मानवता
जो चूर हुआ है मत्सर में
जो क्रूर हुआ है दानव-सा

केवल अपने ही स्वार्थ काज
जो भूखा है बन गया आज,

उस नर का कर संहार, भूमि का भार मिटाने आया हूं!
मिट्टी के पुतले मानव का संसार मिटाने आया हूं!

जो धन के बल पर खेल रहा
निर्धन मानव की किस्मत से,
जो दुनिया के [illegible] रहा
([illegible]) [illegible] की [illegible] का

कामना के कुसुम का गलहार लेकर क्या करूँगा ?
मैं तुम्हारे प्यार का प्रतिकार लेकर क्या करूँगा ?

स्पर्श-चरमोत्कर्ष ही क्या
सृष्टि का साफल्य है री ?
मृत्तिका के पात्र, मनु का
यह हृदय-दौर्बल्य है री !

जानती हो, आँसुओं का
अर्घ्य जिस पर ढुलक जाता ।
एक क्षण पाषाण भी
भगवान बनकर मुस्कराता ।

आज सस्ते स्नेह का सत्कार लेकर क्या करूँगा ?
मैं तुम्हारे प्यार का प्रतिकार लेकर क्या करूँगा ?

प्यार का प्रतिकार लेकर क्या करूँगा!

मैं तुम्हारे प्यार का प्रतिकार लेकर क्या करूँगा?

मोल मेरी साधना का
आज तक तुम कर न पाईं;
जो हृदय की भावना का
मोल करने आज आईं।

मैं तुम्हारा मौन साधक
आज क्या अभिनय करूँगा।
मैं वणिक तो हूँ नहीं, जो
भाव का विक्रय करूँगा!

इस हृदय में प्यार का व्यवहार लेकर क्या करूँगा?
मैं तुम्हारे प्यार का प्रतिकार लेकर क्या करूँगा?

क्या पतंगा चाहता है
दीप से प्रतिदान कोई?
मरण अभिलाषी कभी क्या
मांगता वरदान कोई?

साधना उनकी [illegible]
[illegible]
साधना उनकी [illegible]
[illegible]

आज टूटे हैं, युगों की
शृंखला के बंध मेरे
गगन में गतिमान होकर
मुक्त जीवन-छन्द मेरे,

फिर भला यह बन्धनों का
भार लेकर क्या करूँ मैं।
प्यार की यह मद-भरी
मनुहार लेकर क्या करूँ मैं।

हार हो जिसमें निहित, वह जीत लेकर क्या करूँगा ?
मैं किसी आकुल हृदय की प्रीत लेकर क्या करूँगा ?

प्रीत लेकर क्या करूँगा ?

मैं किसी आकुल हृदय की प्रीत लेकर क्या करूँगा ?

सिकुड़ती परछाइयाँ, धूमिल-
मलिन गोधूलि-बेला;
डगर पर भयभीत पग धर
चल रहा हूँ मैं अकेला,

जिन्दगी की साँझ में
मधु दिवस का यह गान कैसा ?
मोह-बन्धन-मुक्त मन पर
स्नेह-तन्तु-वितान कैसा ?

मरण-वेला में मिलन-संगीत लेकर क्या करूँगा ?
मैं किसी आकुल हृदय की प्रीत लेकर क्या करूँगा ?

नश्वर सपनों से विनिर्मित
है न यह संसार मेरा,
प्रबल झंझा के झकोरों में
पला यह प्यार मेरा,

मैं प्रलय की [illegible] के
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
मैं किसी आकुल हृदय की प्रीत लेकर क्या करूँगा ?
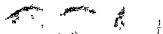
इसलिए क्या दूर मुझसे, नींद के मृदु मेघ नीले।
नयन मेरे ये हठीले !

चीरकर चादर निशा की
दीप में जो आ बसी है;
शलभ-उर की स्वामिनी
वह ज्योति मेरी प्रेयसी है,

आज आलिंगन क्षमा का
है नहीं स्वीकार मुझको,
चाहता विश्वास उर का
है बसी हर साँस में जो;

खोजते है आज जिसको, स्वप्न मेरे ये सजीले !
नयन मेरे ये हठीले !

साथी, अर्धनिशा के सपने !

साथी, अर्धनिशा के सपने !

तन्द्रालस नयनों में आते,
उर के सोये तार जगाते,
अलसाई-सी पलकों में ये, अब तो लगे पनपने !
साथी, अर्धनिशा के सपने !

इन सपनों में मैंने देखा,
धुंधला छाया-चित्र किसी का,
उठी वेदना कवि के उर में, पीड़ा लगी कसकने !
साथी, अर्धनिशा के सपने !

उस निशान्त नीरव रजनी में,
चुपके से आ कहा किसी ने;
जग में सभी पराये हैं रे ! यहाँ न कोई अपने !
साथी, अर्धनिशा के सपने !

आ बतलाऊँ क्यों गाता हूँ ?

आ बतलाऊँ, क्यों गाता हूँ ?

नभ में घिरती मेघमालिका,
पनघट-पथ पर विरह-गीत जब
गाती कोई कृषक-बालिका;

तब मैं भी भावों के पंछी, पिञ्जर खोल उड़ाता हूँ !
आ बतलाऊँ, क्यों गाता हूँ ?

जब सावन की रिमझिम बूँदें,
आती हैं हरिताभ धरा पर
गिरती हैं पलकों को मूँदे,

धूमिल मेघों में तब मैं, [illegible] की धुन गाता हूँ !
आ बतलाऊँ, क्यों गाता हूँ ?

आँधी में उड़ जाता है मन,
पथिक प्रिया के विरह गीत से
गुंजित होते शैल शिखर-वन,

अपने गीतों की पंखुड़ियाँ, अंतरिक्ष में छितराता हूँ !
आ बतलाऊँ, क्यों गाता हूँ ?

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
आ बतलाऊँ, क्यों गाता हूँ ?

या क्षितिज की रेख हो तुम
मर्त्य जिसको छू न पाया;
जिन्दगी की जीत हो या हार हो री कामिनी तुम ?
हृदय-नभ के तिमिर में
तुषार-वसना चांदनी-सी;
कौन हो री, कामिनी तुम ?

कौन हो री कामिनी तुम ?

तिमिरमय जीवन-गगन में,
शुभ्र-वसना चाँदनी-सी
कौन हो री, कामिनी तुम ?

प्रेम की साकार-प्रतिमा
तुम कलामयि कल्पना हो,
या कि मृदु छलनामयी
उर की अलक्ष्य प्रवंचना हो;
[illegible] के अलस-मादक-मरन्द की अनुरागिनी तुम!
तिमिरमय जीवन-गगन में,
धवल-वसना चाँदनी-सी
कौन हो री, कामिनी तुम ?

मधुर आकर्षणमयी हो
किन्तु कितनी क्रूर हो री!
आज अन्तर्वासिनी हो
किन्तु कितनी दूर हो री!
[illegible] की स्वामिनी तुम!
तिमिरमय जीवन-गगन में,
शुभ्र-वसना चाँदनी-सी
कौन हो री, कामिनी तुम ?

[illegible] तुम हो [illegible]
या कि [illegible]

मिल रहे है अधर मधु की यामिनी में;
खिल रहा है चन्द्र उज्ज्वल चाँदनी में;
चिर विरह भी मधुमिलन की
प्रीत बनने जा रहा है !
आज जीवन गीत बनने जा रहा है !

आज जीवन गीत बनने जा रहा है!

आज जीवन गीत बनने जा रहा है!
जिन्दगी के उन कगारों में ज्वार फिर से आ रहा है!
छा गई थी मीत पतझड़ की उदासी,
गान जग से बन गये मेरे प्रवासी;
आज उनको मुरलिका में
पुन कोई गा रहा है!
आज जीवन गीत बनने जा रहा है!

उष्ण लू से पुष्प सारे झड़ गये थे,
हृदय-तरु के पात पीले पड़ गये थे;
उजड़ते उद्यान में, मधुमास
फिर से आ रहा है!
आज जीवन गीत बनने जा रहा है!

भग्न-वीणा पर बजाये हैं किसी ने;
टूटते-से स्वर सजाये हैं किसी ने;
आज उखड़ा श्वास भी
संगीत बनने जा रहा है!
आज जीवन गीत बनने जा रहा है!

चिर समय से था अपरिचित रहा कोई,
याद विस्मृति के उदर में रही सोई;
कल रहा अनजान जो—
अब मीत बनने जा रहा है।
[illegible] है!

बस अरे यही क्या रूप-शिखा ?
जिस पर जल जाता है पतंग;
जिस पर मर जाता है मानव
अपने कोमलतम पंख जला;
जब कवि के भावुक अन्तर में
यौवन का नीरव राग जगा;
तनती सपनों का जाल मधुर
जग की यह मादक मधुरिमता,

क्यों थिरक उठी रजनी-गन्धा, अपना शर्मीला सौरभ ले ?
किस लिए चाँदनी मुस्काई, क्यों नभ में झिल-मिल दीप जले ?

मेघों के धूमिल अंचल में
रजनी को विधु ने प्यार किया,
तब किसकी काव्य-प्रिया ने यह
अपना अभिनव शृंगार किया;
यह कौन वियोगी तड़प रहा
निज सूनेपन का भार लिये;
अपने जीवन के सजल क्षणों में
आँसू का अम्बार लिये;

क्या विहँस रहे तारे उस पर निज व्यंग भरे भावों को ले ?
किस लिए चाँदनी मुस्काई, क्यों नभ में झिल-मिल दीप जले ?

क्यों आज चाँदनी मुस्काई ?

क्यों आज चाँदनी मुस्काई,
क्यों नभ में झिलमिल दीप जले ?
नीरद के निर्मल पंखों पर
अपने यौवन का भार लिये;
काली मतवाली पलकों में
रजनी का पागल प्यार लिये;
तम का वह धूमिल वसन ओढ़
जब सन्ध्या अम्बर से उतरी;
पथ के कण-कण को कर सजीव
उसमें अपनी मुस्कान भरी;

चंचल समीर को छूकर क्यों वन के द्रुम-पल्लव पात हिले ?
क्यों आज चाँदनी मुस्काई, क्यों नभ में झिलमिल दीप जले ?

तारों की छाया के नीचे
मिल रहे कौन दो तरुण हृदय;
भावों की उठती आँधी में
जीवन का प्रारंभिक अभिनय;
वह वयः-सन्धि का प्यार विमल
मस्ती का मादक भँवर जाल;
जिसमें भूले हैं दो भावुक
जीवन का, जग का हाल-चाल;

किसके रतनारे नयनों में प्रिय के शत-शत प्रतिबिम्ब खिले ?
किस लिए चाँदनी मुस्काई, क्यों नभ में झिल-मिल दीप जले ?

लोहित मसि में कलम डुबाकर
कवि ! तुम प्रलय छंद लिख डालो;

नीरद के निर्मल पंखों पर
सपनों का संसार बसाते;
तुम सतरंगी इन्द्रधनुष पर
निज भावों के सुमन सजाते;

सिसक रही है धरती नीचे
तुम तारों का हास लिख रहे;
तुम पतझड़ की मांय-मांय में
फूलों का मधुमास लिख रहे;

किन्तु लेखनी कांप उठेगी
जब नर की चीत्कार सुनोगे;
नारी के बुझते अन्तर की
जब तुम करुण पुकार सुनोगे;

देखो वह शैशव पिसता है,
शोषण के तीखे आरों में;
देखो वह यौवन बिकता है,
गली गली में बाजारों में;

अतः कल्पना-मेघ-परी को
तुम धरती के पास बुला लो !
लोहित मसि में कलम डुबाकर
कवि ! तुम प्रलय छन्द लिख डालो !

जीर्ण-पुरातन के विध्वंसक !
तुम नवीन युग के सृष्टा हो;
सदियों के पथ-विचलित मानव
के अपूर्व तुम पथ-दृष्टा हो;

तुम विलासिता के इस गायक
कवि को थपकी मार सुला दो;

शोणित मसि में कलम डुबाकर

शोणित मसि में कलम डुबाकर,
कवि, तुम प्रलय छंद लिख डालो !

अम्बर के नीलम प्याले में
ढली रात माणिक मदिरा-सी;
कर जग को बेहोश, चाँदनी
बिखर गई मद-मस्त सुरा-सी

तुमने उस मादक मस्ती के
मधुमय गीत बहुत लिख डाले;
किन्तु कभी क्या देखे तुमने
वसुन्धरा के उर के छाले ?

तुम उन पीप भरे छालों में
रस का अनुसन्धान कर रहे;
मौत यहाँ पर नाच रही
तुम परियों का आह्वान कर रहे !

तुम निज सपनों की साकी से
फेनिल मधु का पान माँगते;
माँग रही बलिदान माँगते;
तुम जीवन वरदान धीरत्री

तुम वसुधा के रिक्त पात्र में

कवि तुम कोई राग जगा दो,

जिससे यह नव जाग्रत मानव
अन्यायों की नींव हिला दे,
भू-लुण्ठित उन खण्डहरों पर
मानवता का भवन बना दे,

जीवन का अभिशाप एक हो
जीवन का वरदान एक हो;
धर्म एक, ईमान एक हो
मानव का भगवान एक हो;

तुम समता के मधुर स्वर पर
विप्लव का आह्वान बसा लो;
लोहित मसि में कलम डुबाकर
कवि ! तुम प्रलय छन्द लिख डालो !

तुम कहते संघर्ष कुछ नहीं

तुम कहते संघर्ष कुछ नहीं,
वह मेरा जीवन अवलम्बन!
जहाँ श्वास की हर सिहरन में,
आहों के अम्बार सुलगते,
जहाँ प्राण की प्रति धड़कन में
उमस भरे अरमान बिलखते;
जहाँ मुट्ठी हसरतें हृदय की
जीवन के मध्याह्न प्रहर में;
जहाँ विकल मिट्टी का मानव
बिक जाता है पुनर्नीपर में;
भटक चले भावों के पंछी
मद-गौरव में पथ बिसार कर;
जहाँ जिन्दगी माँग ले रही
महा मृत्यु के विकट द्वार पर,
जहाँ प्राण विद्रोही बन कर
[illegible] की झंकार करेंगे;
[illegible]
[illegible] ेंगे;
[illegible]

उर मे असन्तोष पलता है !

उर में असन्तोष पलता है !
उद्वेलित-अंतर्ज्वाला में मन-पतंग जलता है !
मैं अपने भावुक अन्तर में
प्राणों की चिर प्यास लिये हूँ;
कंठ क्षुब्ध है, अधर दग्ध हैं
किन्तु तृप्ति की आस लिये हूँ;

मैं मरु का चिर-तृषित धूलिकण
हरीतिमा से बहुत दूर हूँ;
विधना का अभिशाप झेलकर,
मैं अपने प्रति आज क्रूर हूँ;

मैं उर में आच्छादित मधु का
मर्म नही पहचान सका हूँ;
विश्व-व्यापिनी विषम व्यवस्था
की कटुता को जान सका हूँ;

फूँक रहा हूँ विष की वंशी
दग्ध हृदय का राग लिये हूँ;
रन्ध्र-रन्ध्र में अंतरतम की
असंतुष्टि की आग लिये हूँ,
सर्व-भक्षिणी ज्वाल कि जिसमें, धू-धू कर जीवन जलता है !
उर में असन्तोष पलता है !

मैं अमरत्व को नहीं चाहता
अमृत पर आसक्त नहीं हूँ,

तुम कहते संघर्ष कुछ नहीं,
वह मेरा जीवन अवलम्बन !

तुम कहते संगीत शांति का
मधुर गीत मैं गाता लूँ,
जीवन को निस्सार समझकर
ईश्वर को आधार बना लूँ,

पर शोषण का बोझ सँभाले
आज देख, वह कौन सो रहा,
धर्म-कर्म की खा अफीम
वह प्रभु मंदिर में पड़ा सो रहा;

कायर रूढ़िवाद का बंदी
क्या उसको इन्सान समझ लूँ ?
परिवर्तन-पथ का यह पत्थर
क्या उसको भगवान समझ लूँ ?

मानव खुद अपना ईश्वर है
साहस उसका भाग्य विधाता;
प्राणों में प्रतिशोध-जगाकर
वह परिवर्तन का युग लाता;

हम विप्लव का शंख फूँकते
शत-सहस्र भूखे-नंगे तन !
तुम कहते संघर्ष कुछ नहीं
वह मेरा जीवन अवलम्बन !

दनुज नहीं हूँ, लघु मानव हूँ
किन्तु मृत्यु से नहीं डरूँगा;
जब तक श्वासें चला करेंगी
जीवन पर अभिमान करूँगा !

उद्वेलित अन्तर्ज्वाला में मन-पतंग जलता है !
उर में असन्तोष पलता है !

किसी विमूर्छित नायक-सा मैं
रण का भूला अब नहीं हूँ.

किन्तु चाहता हूँ जीवन में
जो मेरा अधिकार चिरंतन !
जिसके बिना प्राण व्याकुल हैं
जिससे रहित व्यर्थ है जीवन;

मैं न किसी सुरबाला के
सुरभित अधरों का प्यार माँगता,
किन्तु मनुज बनकर जीवन में
जीने का अधिकार माँगता;

जिसको पा न सका जीवन में
उर में उसकी चाह लिये हूँ;
आशा के धूमिल अंचल में
अपनी अन्तर्दाह लिये हूँ;

जागृत उर में कटु भावों का संघर्षण चलता है !
उर में असन्तोष पलता है !

तुम विद्रोह समझते जिसको
वह मेरी जीवन धड़कन है;
उठने का असफल प्रयास है
मनःशक्ति का उद्बेलन है;

तुम मृत प्राण समझते मुझको
किन्तु शांति से मैं डरता हूँ;
श्वासों के बल पर जी-जीकर
उठने का उपक्रम करता हूँ;

कण्ठ रुद्ध कर डाले तुमने
नष्ट-भ्रष्ट सब साज-बाज हैं;
किन्तु अरे, फिर भी तुम देखो !
उद्धत मेरे गीत आज हैं;

उस युग की जिसमें जमींदार
अंधेर मचाया करते थे;
और जिनका घर-घर घूम-घूम,
कवि गण यश गाया करते थे।

सुनते हैं उनके कण्ठों पर,
था सरस्वती का वास सदा;
पर वे वाणी को बेच-बेच
अपने भावों का कर सौदा
व्यापार कमाया करते थे।

कब उनकी मरी भावना में,
जनता के जीवन-गान जगे;
कब देश-प्रेम की ज्वाल धधक,
उनके ज्वलंत अरमान उठे;

क्या निर्बल मानव के दुःख पर
उनके आँसू बह चले कभी ?
कब दीन-जनों की आहों में
उनकी यह काव्य-कला जागी ?

बस एक यही पेशा उनका,
बस एक यही था काम उन्हें;
रच-रचकर झूठे शब्द-जाल
गा-गाकर गान लुटेरों के,

उन राज-सभाओं में, अपनी
वे धाक जमाया करते थे;
फिर निमित्त दान के मिले हुए
उन टुकड़ों पर जीकर अपना;

वे गुजर चलाया करते थे;
कविराज कहाया करते थे।

वे रक्तधार से सनी हुई

वे रक्तधार से सनी हुई,
सामन्त काल की सन्ध्याएँ,
लोहू से लथपथ नर प्रभात।

जब नरपति कहलाते ईश्वर,
मानव के उसके जीवन के
अधिकारी समझे जाते थे।

वे नरपति, जिनमें मानवता
थी लेशमात्र भी शेष नहीं,
जो केवल पशुता के बल पर
साम्राज्य बनाया करते थे।

घर-घर में डाके मार-मार,
गढ़-कोट-किले-मीनार बना;
अधिकार जताया करते थे।

गढ़-कोट-किले-मीनार कि जो,
अब भी धरती की छाती पर
गन्दे फ़ोड़ों से पड़े हुए;
जन-जन के दिल का दर्द लिये,
जो गन्दा पीप बहाते हैं

जो घृणित, पतित अन्याय भरे
उस युग की याद दिलाते हैं।

पोषित करते थे नरपति के
उन्मुक्त-वासना-युक्त प्राण !

पर एक दिवस होगा ऐसा,
जब होंगे इनके नेत्र लाल;
शत-शत नयनों से फूटेगी
प्रतिशोध-घृणा की तीव्र ज्वाल !

औ' आयेंगे तूफान विकट
घनघोर आँधियाँ आयेंगी;
तब क्या इनकी दुर्बल हस्ती
तूफानों में टिक पायेगी ?
नहीं-नहीं आँधी में उड़ जायेगी !

तब केवल राख रहेगी फिर
अस्तित्व-मात्र बनकर उनका
औ' ले अँगड़ाई जाग उठेगी
सदियों से सोई जनता।

तब सिहर उठेंगे कब्रों में,
वे कोटि-कोटि जनगण के दुश्मन
जनता के वे सब अपराधी।
जिनने मानव की लाशों पर
ये भव्य भवन निर्माण किये
औ' जिनके कलुषित कामों के
फिर-फिर तुमने यश गान किये।

रे कवि ! तुम भूले-भटके हो,
अब भी सन्ध्या है लौट चलो;
उन्नति की प्रातर्वेला में
तुम अपना नव-निर्माण करो।

बन रहा आज जो नया राष्ट्र
उसकी उठती प्राचीरों में;
तुम अपने नूतन भाव भरो
हे सरस्वती के वरद पुत्र !

मधुरिम की प्यासी नींद रही
अलबेल अलसाती रातों में,
जो किसी अपरिचित युवती के
घुट-घुट मरते अरमान विकल,
पर नरपति करती थी वैभव,
अधरों पर नव मुस्कान लिये।

महलों की गुम्बज मीनारों पर
छुपी, मखमली दालानों में
जो विकल वासना चिनगारी
पाहन-कुचों से फिसल-फिसल
जब तरुण जवानी रोती थी;
ले अँगिया में जोबन उभार
नृप के नयनों के डोरों पर,
घूमा करता था नव-खुमार।

कहते राजाजी, 'बन्द करो
बस बहुत हो चुका रास-रंग;
अब कविजी की प्रतिभा देखो
बजने दो कविता की मृदंग।'

तब कविजी अपने अंतर में,
कर सरस्वती माँ को प्रणाम।
सहलाकर कुन्तल केश-पाश,
कहते थे उन अन्नदाता के
दो चार प्रशंसा भरे गीत;

फिर विप्र-लम्भ शृंगार मधुर
वे भाव वासना के उन्मद,
जो बिजली बनकर गिरते थे
तरुणी की कृश जंघाओं पर।

कवि भूल गये उन कीड़ों को

स्वार्थ से उन्मत्त मानव,
मिल सकेंगे आज कैसे ?

रक्त-शोषण की भयंकर भावना जो पल रही है !
आज होली जल रही है !

आज होली जल रही है

राज्य-लिप्सा के नशे में,
विहँसता है आज दानव;
शासना के पाट में जो,
पिस रहा है दीन मानव;
आज उसकी आह में, धन की हवेली हिल रही है!
आज होली जल रही है!

स्वर्ण सत्ता के सहारे,
नग्न होकर नाचता नर;
शक्तिशाली दीन-शोणित
पी रहा है पेट भर-भर;
आज पृथ्वी पर पिशाचों की ठठोली चल रही है!
आज होली जल रही है!

आज अबला नारियों की,
लाज लुटती जा रही है;
चक्षु में चिनगारियों की
ज्वाल जुटती जा रही है;
दलित-जीवन-पात्र में अब हिंस्र हाला ढल रही है!
आज होली जल रही है!

सृष्टि में शीतल सुमन भी,
खिल सकेंगे आज कैसे ?

आज खिली सुमनों पर लाली !

आज खिली सुमनों पर लाली !
कुसुमायुध के बाण नुकीले बेध रहे अन्तर को आली !
आज विपथन मलय-पवन है,
और विपथन मेरा मन भी !
नव पल्लव से हुए सुसज्जित
आज वनों के विटप-सघन भी !
पर न पल्लवित होने पाई, जर्जर जीवन-तरु की डाली !
आज खिली सुमनों पर लाली !

मग्न हुई मैं मिलन-यामिनी की
सुन्दर, सुखदा सुस्मृति में;
भग्न हुई मेरी आशा क्या
लौट सकेगी इस संसृति में ?
आज तृषित मेरा हृदय-स्थल, हरित हुई वन की हरियाली !
आज खिली सुमनों पर लाली !

उनकी आकृति आकर उलझी
मेरे सपनों के तानों में;
विकल कोकिला कूक रही है
आज आम के उद्यानों में;
मुर्झाई-सी मन की लतिका जब से चला गया है माली !
आज खिली सुमनों पर लाली !

उसके उन्मादक गीतों से, जग उठी जेल की दीवारें
वह कांप उठा अत्याचारी, थी बंद हो गयी हुंकारें
कुछ सिहर उठा था सिंहासन, था उदित हो गया क्रुद्ध शाप
उस आन्दोलन की ज्वाला से पापी का जलने लगा पाप
पर अत्याचारी शासक ने धोखे से उसको पकड़ लिया
उस दहाड़ते हुए सिंह श्रावक को जंजीरों में जकड़ लिया
वह कैदी था पर झुका नहीं था अडिग रहा देशाभिमान
वह बंदी था पर झुका नहीं क्या हुई भावनायें गुलाम
कारा की कठिन यातनाओं से कट गया गात उसका कोमल
अत्याचारों की आग जला वह पुष्प गया ज्वाला में जल
चल पड़ा दनुज का दमन चक्र, उसकी नृशंसता कठिन क्रूर
पिस गयी मनुज की मानवता होकर पांवों से चूर-चूर
उसके ज्वलंत अरमानों का हो गया भव्य प्रासाद ध्वस्त
हो गया जेल के आंगन में वह सोदा कुल का सूर्य अस्त
खो गया देश का वह वैभव, माता ने खोया था सपूत
था मरा नहीं वह अमर हुआ चिर स्मरणीय वह क्रान्तिदूत
फिर एक दिवस होगा ऐसा चारण वाणी की आग जलेगी
सकल चितायें भभक उठेगी, उस शहीद की राख जगेगी
तब होगा प्रतिकार हमारा मन की साध मिटानी है
दीप शिखा के परवाने की यह बलिदान कहानी है

धोरांआला देश जाग रे

धोरांआळा देश जाग रे, ऊंठांआळा देश जाग
छाती पर पैणा पड्या नाग रे, धोरांआळा···

उठ खोल उनींदी आंखड़ल्यां
नैणां री मीठी नींद तोड़
रे रात नहीं अब दिन उग्यो
सपनां रो कूड़ो मोह छोड़
थारी आंख्यां में नाच रह्या
जंजाळ सुहाणी रातां रा
तू मोट बणावै उण जूनेड़े
जुग री मोटी बातां रा
रे बीत गयो सो गयो बीत
अब उणरी कूड़ी आस त्याग
छाती पर···

[illegible]ता रे लाग्यो आज काट, खूंटी पर टंगिया धनुष तीर
[illegible]लोग मरे भूखां मरता, पोथा में रुळता फिरे वीर
[illegible]ठो किरसाणां मजदूरां, थे ऊठो कमर्‍यां आज बांध
[illegible]पाखोर अन्याय नै कर द्यो बोटी री सौ सौ सांध
[illegible] बिखर काळिये, सापां री, तू आज मिटा दे अहर्यां झाग
छाती पर···

[illegible]ड़ मिनख गुलाम रह्यो, मरसी पण सुरियल हँ बांसो।
[illegible]ी हवेल्यां हंसे आज, पण झूंपड़ल्यां री दुख दूणो

पणघट पर डेडर डहक उठ्या,
सरवर रौ हिवड़ौ हुलसायौ।

चातक री मधुर पीहू रौ स्वर,
उन्मुक्त गगन में सरसायौ।

मुरधर रै धोरां दूर हुई
वा दुखड़ै री छाया गहरी।

आई सांवण री तीज सुखद,
गूंजी गीतां में सुर लहरी।

झूलां रा झुकता पैंग देख,
तरुणां रौ हिवड़ौ हरसायौ।

सुण पड़ी चूड़ियां री खणखण,
वो चीर हवा में लहरायौ।

अै रजबर रा कर्मठ किसांन,
मेहनत रा रूप, जका नाहर।

धरती री छाती चीर चीर,
अै धान उगा लावै बाहर।

उण मेहनत रौ फळ देवण नै,
सुखदायक चौमासौ आयौ।

धरती रौ कण कण व्है सजीव
मुरधर में जीवण लहरायौ।

ऐ धनआळा थारी काया रा, भक्षक वणता जावें है
रे जाग खेत रा रखवाळा, आ बाड़ खेत ने खावें है
ऐ जका उजाड़ै झूपड़ल्यां, उण महलां रे तू लगा आग
छाती पर...

ऐ इनकलाब रा अंगारा, सिलगावे दिल री दुखी हाय
पण छांटां छिड़कां नहीं बुझेली, डूगर लागी आज लाय
अब दिन आवेला एक ऐड़ो, धोरां री धरती धूजैला
ऐ सदा पत्थरां रा सेवक वे आज मिनख ने पूजैला
ई सदा सुरंगें मुरधर रा, सूतोड़ां जाग्या आज भाग
छाती पर...

सहकर हण्टर री मार "मनुज" मुस्कान बिखेरियां खड़्यो रवै
सहकर खूटे पर खड़्यो रहे पथ पर पत्थर ज्यों पड़्यो रवै
बहनां री इज्जत लूट दनुज नित अट्टहास करतो जावै
जद···

बै घिसी व्यवस्था रा प्रेमी बै शोषक सत्ता रा हामी
बै लम्बा तिलक लगावणिया है काती रा कुत्ता कामी
सोनै चांदी रै टुकड़ां पर मानव इज्जत रो मोल करै
तन रो तांबै सूं तोल करै
मन बिक ज्यावै, तन बिक ज्यावै जीवन रो सोरभ लुट जावै
[illegible] मानवी योणी मात्र पण उण भखै मन री बा भूखै नहीं

नाम—मालदान

उपनाम—मनुज देपावत

जन्म—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी। वि० संवत् 1984

जन्मस्थान—देशनोक (बीकानेर-राजस्थान)

रचनात्मक कार्य—प्रजा-परिषद्, बीकानेर के माध्यम से उत्तरदायी प्रजातांत्रिक शासन के लिए सक्रिय प्रयत्न। साप्ताहिक 'लोकमत' का सह-सम्पादन, करणी मंडल देशनोक के संस्थापक सदस्य। 'ललकार' (बीकानेर-साप्ताहिक) 'नई चेतना' (बीकानेर-मासिक) 'नया समाज' (कलकत्ता-मासिक) तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं के सुकवि एवं लेखक। उत्तरी रेलवे के टिकट कलेक्टर। अनेक कवि-गोष्ठियों व कवि-सम्मेलनों में स्वर्ण-पदकों एवं अन्य पुरस्कारों द्वारा सम्मानित। हिन्दी और राजस्थानी के सुबहुमान्य एवं प्रतिष्ठित कवि।

डा० नरपतिसिंह सोढ़ा

जन्म : 3 जुलाई, 1948 को शाहपुरा (भीलवाड़ा) में

प्रकाशन : सन् 1971 ई० से हिन्दी तथा राजस्थानी में नियमित लेखन

- 'जमा हुआ गोश्त तथा लालची मछलियां' कविता संकलन (1975)
- 'सोये नगर के विरुद्ध' कविता संकलन का सम्पादन
- 'संकल्प' अनियतकालीन प्रगतिशील नवचेतना पत्रिका का सम्पादन
- 'सूरज फिर निकलेगा' कहानी संग्रह का सम्पादन
- 'तैराकी सीखिए' पुस्तक का सहयोगी लेखक
- नव साक्षरोपयोगी पुस्तकें 'तेजाजी', 'जाम्भोजी' तथा 'पाबूजी' आदि पुस्तकें प्रकाशित
- राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी की 'जागती-जोत' मासिक पत्रिका का अप्रेल '83 से सितम्बर' 83 तक सम्पादन
- राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा आयोजित 'हिन्दी भाषा संगोष्ठी' (1970-71) के दैनिक बुलेटिन का सम्पादन
- प्रौढ़ शिक्षा/अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में गत 7 से कार्यरत

मनुज देपावत भरी जवानी में रेल दुर्घटना में नहीं रहे वरना उनसे साहित्य और समाज को बड़ी आशाएँ थीं। देपावत में कवितात्मक सावधानी औरों से अधिक थी अतः उनकी संरचना में कौशल भी मिलता है। कवि कौशल अपरिहार्य शब्द और अपरिवर्तनीय *विन्यास में झलकता* है।'''दूसरे ध्रुव पर व्यवस्था विरोध की लपटें हैं जिनमें कवि अपने आपको प्रलयवाहिनी का वाहक कहता है और *निराशा, रोमान, अंधविश्वास और उनके लेपन के विरुद्ध* हममें आक्रोश और उत्साह जगाता है। उसे आज के समाज में, मनुष्यों के आकार में, राज्यलिप्सा के नशे में *विहँसते* दानव दीखते हैं। *मनुज देपावत इसी जनरक्त*-पिपासु दानव-वर्ग के विरुद्ध कवितात्मक संघर्ष करते हुए खेत रहे।

मनुज देपावत के कवि में कोरी *भावुकता नहीं है,* उसमें जन स्थिति की पूरी समझ है। वह वर्ग शत्रु को पहचानता है और हृदय की पूरी उछाल से वह चोट करता है।

—डा॰ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय